निवेदन

साहित्य सम्मेलन की ओर से जिन पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध किया गया है, उनमें कबीर पदावली भी है। जिस समय सम्मेलन ने मुझे कबीर पदावली के संग्रह करने की आज्ञा दी, उस समय मेरे सामने सब से बड़ी कठिनाई यह थी कि कबीर का शुद्ध पाठ मेरे सामने नहीं था। यों तो कबीर के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं पर सभी संग्रहों में पाठ की प्रामाणिकता संदेहग्रस्त है। अभी तक कबीर की रचना के तीन पाठ प्राप्त हुए हैं :

(१) कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा) प्रकाशित सन् १९२८, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

(२) संतबानी संग्रह (बेलवेडियर प्रेस) प्रकाशित सन् १९०४, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

(३) बीजक मूल (कबीर चौरा, बनारस) प्रकाशित सन् १९३१ महावीर प्रसाद, नेशनलप्रेस, बनारस कैंट।

बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य का विशेष उपकार किया है। उन्होंने उक्त ग्रंथ का संपादन सं० १५६१ की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया है। यह प्रति प्रामाणिक है या नहीं यह संदिग्ध है। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह है कि इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका ग्रंथ में लिखे गए अक्षरों से भिन्न अक्षरों में लिखी गई है। और दूसरा यह कि इस प्रति में पंजाबीपन बहुत है। यह प्रति बनारस में लिखी गई थी :

"सपूर्णसंवत् १५६१ लिप्पकृतावाणारसमध्यपेमचंदपठनाथ् मलुक-दास……इत्यादि।"

बनारस में लिखी जाने के कारण इसमें पूर्वीपन ही अधिक होना चाहिये पर इसके विपरीत इसमें पंजाबीपन बहुत है। कबीर की बोली भी पूर्वी ही है जैसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। इस परिस्थिति में इस प्रति में पंजाबीपन होना इसके विषय में संदेह उत्पन्न करता है। ग्रंथावली के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास स्वयं इस विषय को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वे इस पंजाबीपन का कारण "लिपिकर्त्ता की कृपा का फल" अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव बतलाते हैं।

अतः कबीर की कविता का प्रामाणिक पाठ अभी तक विवाद-ग्रस्त है।

बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित संतबानी संग्रह कबीर का दूसरा पाठ प्रस्तुत करता है। यह प्रति अधिकतर सन्तों और महात्माओं के द्वारा इकट्ठी की गई सामग्री के आधार पर प्रकाशित की गई है। अतः इसके विषय में भी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

कबीर चौरा से प्रकाशित बीजक मूल का पाठ अनेक प्रतियों के आधार पर किया गया है। इसके सम्पादक साधु लखनदास और साधु रामफल दास लिखते हैं:

"अपने मन तथा इस ग्रन्थ का संशोधन ग्यारह ग्रन्थों से किया है जिसमें छः टीका टिप्पणी साथ हैं और पाँच हाथ की लिखी पोथी हैं परन्तु इन सब ग्रन्थों को साक्षी रूप में रखा था, केवल स्थान कबीर चौरा काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।"

किन्तु कबीर चौरा का यह पाठ किस प्राचीन लिपि के आधार पर है यह सम्पादक महोदयों ने नहीं लिखा। अतः यह पाठ अप्रामाणिक है।

मेरे सामने अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ श्री आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब का ज्ञात होता है। इस ग्रंथ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देव ने सन् १६०४ (संवत् १६६१) में किया था। सन् १६०४ का यह पाठ प्रामाणिक ज्ञात होता है। इसका कारण यह है कि श्री

अर्जुन देव ने अधिक से अधिक विश्वस्त रूप में तत्कालीन प्रचलित संतों के काव्य का संग्रह नव निर्मित गुरुमुखी लिपि में किया था। फिर यह ग्रंथ साहब सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ है। उन लोगों के द्वारा यह ग्रंथ 'देव-स्वरूप' पूज्य होने के कारण अपने रूप में अपरिवर्तित रहा और इसके पाठ को स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं हो सका। यहाँ तक कि एक एक अक्षर और एक एक मात्रा को मन्त्र-शक्ति से युक्त समझ कर उसे अपने मूल रूप से लिखने और छापने का क्रम चलता गया। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है। जब यह देव नागरी लिपि मे छापा गया तो 'शब्द के स्थान शब्द' रूप में ही यह छापा गया क्योंकि सिक्ख धर्म के अनुयायियों में विश्वास है कि 'महान पुरुषों की तरफ से जो अक्षरों के जोड़-तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्व साधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन-पाठन में यथा तथ्य उच्चारण से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरुग्रंथ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिंदी बीड़ गुरमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी अक्षरों के स्थान हिंदी (देव नागरी) अक्षर ही किये गये हैं।" (आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी-प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १, मोहनसिंह वैद्य, तरन तारन, अमृतसर, १९२७)। इस प्रकार आदि श्री गुरुग्रंथ साहिब का जो पाठ सन् १६०४ में गुरु अर्जुन देव ने प्रस्तुत किया वह आज भी अपने प्रथम रूप में वर्तमान है। उसे किसी पंडित ने 'शोधने' की कृपा नहीं की। अतः इस पाठ को हम अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप में मान सकते हैं। यही पाठ प्रस्तुत पुस्तक में रक्खा गया है।

इस संग्रह में प्रस्तावना कुछ बड़ी है। इससे कबीर का महत्त्व अधिक स्पष्ट होगा यही समझ कर विद्यार्थियों की सहायता के लिए इसका

प्रस्तावना

कबीर-परिचय

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में कबीर की कविता हिंदी साहित्य के इतिहास की सब से बड़ी विभूति है। उसमें आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन की जितनी सहज और स्वाभाविक संधि है उतनी हमें अन्य किसी कवि में प्राप्त नहीं होती। शास्त्रीय सिद्धान्तों की पवित्रता जितनी अधिक जनता में मान्य थी, उतनी ही अधिक उसकी दुर्बोधता अग्राह्य थी। एक तो शास्त्रीय सिद्धान्त केवल आचार्य वर्ग में ही सीमित थे, जनता का उनके साथ निकट संबंध नहीं था, दूसरे संस्कृत में लिखे जाने के कारण वे आसानी से प्रचारित भी नहीं हो सकते थे; तीसरे उनकी रूढ़ियाँ जनता की सामयिक परिस्थितियों से मेल भी नहीं खा सकती थीं; चौथे राजनीतिक वातावरण उनके अनुकूल नहीं था और पाँचवें उन धार्मिक सिद्धान्तों में जटिल तर्क की ऐसी शृंखला थी कि वह सिद्धान्त जन-साधारण के विश्वास का आधार नहीं बन सकता था। कबीर ने इन सब परिस्थितियों से धार्मिक सिद्धान्तों को मुक्त कर स्वतंत्र वायुमंडल में व्याप्त होने का अवसर दिया। उन्होंने शास्त्रीय सिद्धान्तों का ज्ञान शास्त्रों से भले ही स्वीकार न किया हो किन्तु वेदान्त के सभी प्रमुख सिद्धान्तों को उन्होंने अत्यंत सफलता के साथ हृदयंगम किया। जिस परंपरा में उन्होंने अपने धार्मिक विश्वासों की रूप-रेखा तैयार की, वह परंपरा जितनी हिंदू दृष्टिकोण से बनी थी, उतनी ही मुसलमानी दृष्टिकोण से भी। हिंदू दृष्टिकोण से धर्म की अनुभूति का विषय जितना अधिक सत्संग में माना गया है, अथवा गुरु के उपदेशों में समझा गया है,

उतना ग्रंथों के अध्ययन में नहीं। इसी प्रकार मुसलमानी दृष्टिकोण से ग्रंथ या लिखित ज्ञान शैतान का साधन समझा गया है। यही कारण है कि सूफ़ी धर्म वालों ने व्यक्तिगत अनुभूति और पीर (गुरु) द्वारा इंगित मार्ग को अधिक श्रेयस्कर समझा है। इसलिए कबीर का धार्मिक दृष्टिकोण प्रमुखतः सत्संग या स्वानुभूति का विषय है, ग्रंथ-अध्ययन का नहीं। अपने इस सत्संग ज्ञान को उन्होंने आचार्य वर्ग के धर्मगत अधिकार का विषय नहीं रहने दिया। उन्होंने उसे सीमित परिधि से निकाल कर जन-साधारण में एक सहज और सुबोध ज्ञान के रूप में मुक्त कर दिया। इसका फल यह हुआ कि उन्होंने आचार्य वर्ग की व्यर्थ महत्ता का समूल उन्मूलन कर दिया और ब्रह्म ज्ञान को व्यक्तिगत जीवन की साधना का विषय बना दिया। फल यह हुआ कि अभी तक जो शास्त्रीय सिद्धान्त आतंक और उदासीनता का प्रतीक था वह सामाजिक जीवन के अंग अंग में पैठ कर व्यावहारिकता का विषय बन गया और जन-साधारण से उसका निकटतम संपर्क हो गया। दूसरी बात कबीर ने यह की कि जो धर्म सिद्धान्त संस्कृत में लिखे और पढ़े जाते थे उन्हें जन-समुदाय की भाषा में प्रचारित कर उन्हें समाज के सभी वर्गों में सरलता से बोधगम्य बना दिया। तीसरी बात कबीर ने यह की कि धर्म की जो रूढ़ियाँ जनता की सामयिक परिस्थितियों से मेल नहीं खाती थीं, उन रूढ़ियों का विनाश उन्होंने जड़मूल से कर दिया। ऐसे कर्मकांड की व्यर्थ उलझनें जिनमें जनता सच्चे मार्ग से भ्रष्ट होकर केवल आडंबर दिखलाने में ही अपनी समस्त शक्तियों का अपव्यय करती थी, उन्हें उन्होंने अधर्म कह कर घोषित किया और जनता के अंध-विश्वासों पर कुठाराघात कर जीवन का सहज-साध्य मार्ग दिखलाया। कबीर की चौथी बात यह थी कि धर्म के जो रूप राजनीतिक परिस्थितियों के प्रतिकूल थे उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर उन्हे अधिक से अधिक व्यावहारिक जीवन का रूप दिया और धर्म को किसी प्रदर्शिनी की कला-वस्तु न बना कर एक मात्र चिंतन और

और आत्म-परिष्कार का विषय बना दिया। जहाँ कहीं उन्हें राजनीतिक बात चक्र में पड़ना पड़ा, वहाँ उन्होंने पूर्ण शक्ति और साहस से उससे संघर्ष भी लिया। पांचवें धार्मिक सिद्धांतों में जटिल तर्क की जो श्रृंखला थी वह साधारण जनता की समझ के बाहर थी, उसे उन्होंने किंचित् मात्र भी प्रश्रय नहीं दिया। उसके पर्याय उन्होंने धर्म को जीवन के ऐसे सरल अनुभवों के साथ जोड़ा कि वह उनके साधारण मनोविज्ञान का विषय बन गया। उन्होंने धर्म की व्यापक भावनाएँ जीवन के ऐसे सच्चे रूपकों द्वारा स्पष्ट कीं कि वह आतंक के स्थान पर प्रेम और आग्रह का आधार बन गया और समस्त जनता धर्म के व्यावहारिक रूप से अनुप्राणित हो उठी।

इस प्रकार कबीर ने धर्म के क्षेत्र में ऐसी क्रांति उपस्थित की जो किसी धर्म के आचार्य के द्वारा जनता के बीच मे अभी तक उपस्थित नहीं की जा सकी थी। उन्होंने पहली बार इस धार्मिक क्रांति के सहारे जनता के हृदय में अपने धर्म के लिए ऐसी सच्ची श्रद्धा का बीज वपन किया जो अनेक युगों तक राजनीति और अन्य धर्मों के प्रचड आघातों से भी जर्जरित नहीं हो सका। यह विचार-धारा जनता के लिए एक ऐसी शक्ति बनी जिसके द्वारा उनके जीवन का विश्वास उनके जीवन का सबसे बडा बल सिद्ध हुआ। कबीर द्वारा चलाई गई निर्गुण संप्रदाय की धारा हिंदी साहित्य में अपना विशेष महत्व रखती है।

कबीर का काव्यगत दृष्टिकोण।

कबीर ने जनता में अपने धार्मिक विश्वासों का प्रचार काव्य का आश्रय लेकर किया। उन्होंने अपने उपदेशों को शब्दों और साखियों के रूप में जनता के सामने उपस्थित किया। वे जानते थे कि संगीत का प्रभाव रागात्मक प्रवृत्तियों पर होता है और धर्म का रागात्मक प्रवृत्तियों से निकटतम संबंध है। इसलिए धर्म के स्वाभाविक और सहज सिद्धांतों

को हृदयंगम कराने के लिए उन्होंने गद्य के बदले पद्य को अधिक सफल साधन समझा।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कबीर के पूर्व हिंदी साहित्य में काव्य की श्री-संपन्नता नहीं के बराबर थी। न तो भावों के दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य समृद्ध था और न भाषा के दृष्टिकोण से हिंदी की कोई जनपदीय बोली सर्वमान्य समझी गई थी। कबीर के पूर्व अधिक से अधिक विद्यापति की पदावली थी जो मैथिल में लिखी जाकर मिथिला और उसके समीपवर्ती भागों में गाई जाती रही होगी या अमीर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ थीं जो जनता के कौतूहल का विषय बन कर पनघट या मीर मुलाहजों के वार्तालापों में बुलझाई जाती रही होंगी। अमीर खुसरो ने हिंदी में किसी गंभीर साहित्य की रचना नहीं की। उनकी काव्य रचना धर्म जैसे पवित्र साहित्य की ओर संकेत भी नहीं करती। उसमें न तो संयत जीवन की अभिव्यक्ति है और न उसमें सन्निहित कोई गंभीरता ही है।

राजस्थान में डिंगल के अंतर्गत वीर गाथाएँ अवश्य लिखी और पढ़ी जाती रही होंगी ! किंतु उन वीर गाथाओं में लौकिक चरितों का ही प्राधान्य रहता था। किसी नरेश की वंशावली, उसकी युद्ध-यात्राएँ अथवा उसके विलास के उपकरणों का विस्तृत वर्णन करना ही चारणों की काव्य-कला का चरम आदर्श था। ऐसी स्थिति में कबीर के सामने न तो भावनाओं का ही ऊँचा आदर्श था और न भाषा की ही काव्य संबंधी परंपरा थी। यह परंपरा तो सोलहवीं शताब्दी के अंत और सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जाकर बनी जब सूरदास एवं अष्टछाप के अन्य प्रसिद्ध कवियों ने ब्रजभाषा को काव्य से सुसज्जित कर साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया अथवा मलिक मुहम्मद जायसी या तुलसीदास ने अवधी को काव्य के सिंहासन पर अधिष्ठित कर उसे अमरत्व प्रदान किया। किंतु कबीर के समय में साहित्य की परंपराओं का एक मात्र अभाव था। यह

बात दूसरी है कि सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी में धर्म के विषयों का निरूपण करना प्रारंभ कर दिया था। किंतु यह सब साहित्य फ़ारसी में था। अतः यह स्पष्ट है कि कबीर ने धर्म जैसे गंभीर विषय के विवेचन में जब जन-समुदाय की भाषा का आश्रय ग्रहण किया तो उनके सामने एक गंभीर उत्तरदायित्व था। उन्हें काव्य की परंपराओं का पहली बार निर्माण करना था और अपनी भाषा को ऐसा रूप प्रदान करना था, जो अधिक से अधिक जनता के द्वारा समझा जा सके। यही कारण है कि वे लोक-रुचि और सुबोधता के दृष्टिकोण से अपनी भाषा को इतना सरल रूप देने के पक्षपाती थे कि वे उसका विशेष संस्कार भी नहीं कर सके। उन्हें जन-समुदाय की स्वाभाविक भाषा को ही काव्य के क्षेत्र में लाना पड़ा और काव्य परंपराओं के अभाव में, उन्हें किसी प्रकार का साहित्यिक बल प्राप्त नहीं हो सका। यही क्या कम बात है कि कबीर जन-समुदाय की भाषा का अपने विचारों की स्वतंत्र अभिव्यंजना में सफलता के साथ प्रयोग कर सके। इस भाँति कबीर को अपने पथ का निर्माण स्वयं ही करना पड़ा और उसमें काव्य की सहज अनुभूतियों को प्रकट करना पड़ा। रेखा-चित्र बना कर उसमें अमर रंग भरने का कार्य कबीर की बड़ी विशेषता है। तुलसी और सूर को तो भाषा का रेखा चित्र पहले से ही प्राप्त था। मलिक मुहम्मद जायसी और प्रेमाख्यान के अन्य कवियों ने अवधी को साहित्य-रूप देने की परंपरा डाल दी थी, अथवा विट्ठलनाथ और गोकुलनाथ ने व्रजभाषा में पद्य और गद्य रचना कर व्रजभाषा को सौष्ठव प्रदान करना प्रारंभ कर दिया था। बाद में तुलसी और सूर ने भाषा के रेखा-चित्रों में अपनी अमरवाणी का स्थायी रंग भरा किंतु कबीर के सामने इस प्रकार का भाषा या भावगत कोई उदाहरण नहीं था। ऐसी स्थिति में काव्य के दृष्टिकोण से सूर और तुलसी की रचनाओं से कबीर की रचनाओं की तुलना कबीर के साथ अन्याय करना है। कबीर के समय की परिस्थितियों पर पूर्ण रूप से

विचार कर उनकी काव्य-साधना का उचित मूल्य निर्धारण करना साहित्य के इतिहास का आवश्यक अंग है।

कबीर की भाषा का रूप

कबीर ने अपनी भाषा को जनता के हृदय की वस्तु बनाने की चेष्टा की, इस पर अभी विचार किया जा चुका है। उन्होंने उसे इतना सरल और सुबोध बनाया कि जनता धर्म के गंभीर तत्वों को आसानी के साथ समझ सके। इसलिए कबीर काव्य के श्रृंगारमय उपादानों से अपनी भाषा को अलंकृत नहीं कर सके। उस समय काव्यगत परिपाटियों के न रहने से कबीर को काव्य की भाषा-विशेष भी नहीं मिली। अतः उन्होंने अपने व्यवहार की भाषा पूर्वी हिंदी को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। कबीर की इस पूर्वी हिंदी पर अनेक भाषाओं का प्रभाव दीख पड़ता है। इसके दो कारण हो सकते हैं:

१. कबीर पर्यटन शील थे और जहाँ वे जाते थे, वहीं के जन-समुदाय की भाषा के व्यावहारिक रूप वे ग्रहण कर लेते थे।

२. उस समय राजस्थानी में डिंगल में चारणों की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हो चुकी थीं। इसलिए संभव था कि राजस्थान से बाहर भी उन्हीं रचनाओं के बिखरे हुए छंद जनता में प्रचलित हो गए हों। इन रचनाओं का समाज में प्रचार होने से उनकी भाषा भी समाज के लिए अपरिचित न रही होगी। ऐसी परिस्थिति में कबीर ने डिंगल अथवा राजधानी भाषा के कुछ प्रभाव भी अपनी भाषा में यथा-स्थान आ जाने दिए हों।

पहले कारण से पजाबी और खड़ी बोली और दूसरे कारण से राज-स्थानी कबीर की पूर्वी भाषा पर अपने स्पष्ट चिह्न छोड़ती हुई दीख पड़ती है। भाव व्यंजना ही कबीर का प्रमुख उद्देश्य होने के कारण कबीर ने अपने काव्य में भाषा का अधिक से अधिक व्यावहारिक रूप

रखना समीचीन समझा हो । इस प्रकार कबीर की काव्य-भाषा प्रधान रूप में तो पूर्वी (अवधी) है पर उस पर पंजाबी, खड़ी बोली और राजस्थानी का भी प्रभाव है । पंद्रहवीं शताब्दी में काव्य की परिपाटियों के अभाव में कबीर की भाषा का यह रूप अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता ।

कबीर का धार्मिक दृष्टिकोण

कबीर अपने दृष्टिकोण से धर्म के मूल रूप को उपस्थित करना चाहते थे । उनका धर्म ऐसी विश्वजनीनता लिए हुए था जिसमें किसी प्रकार का जाति-भेद या वर्ण-भेद नहीं था । हिंदू और मुसलमान, या ब्राह्मण और शूद्र उस धर्म में समान साधना और सिद्ध के अधिकारी थे । इस प्रकार उनका धर्म विश्व-धर्म (Universal Religion) के नाम से घोषित किया जा सकता है ।

मुसलमानों के आगमन से हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों में असुविधा और असतोष की भावना आ गई थी क्योंकि मुसलमानों में अनेक सुलतान ऐसे हुए जिन्होंने हिंसा के साथ धर्म का प्रचार किया, किंतु मुसलमानों के ऐसे वर्ग के साथ सूफ़ियों का भी एक वर्ग था जो क़ुरान के आधार पर सहिष्णुता पारस्परिक प्रेम और शान्तिमयी आराधना में विश्वास मानते थे । सूफ़ियों की इस शान्तिमयी उपासना ने कबीर को बहुत बल प्रदान किया । सूफ़ियों के साधनागत दृष्टिकोण से उन्होंने तत्कालीन हिंदू धर्म का दृष्टिकोण मिलाकर पारस्परिक सौहार्द की ऐसी भावना को जन्म दिया जिसने विद्रोह और विरोध की भावना को एकदम शान्त कर दिया । यह बात अवश्य भारतीय इतिहास से सिद्ध होती है कि कबीर के पूर्व भी सिद्ध संप्रदाय और नाथ संप्रदाय की भावना वर्णगत भेदभाव के प्रतिकूल ही थी किंतु एक तो ये दोनों संप्रदाय एक सीमित क्षेत्र में ही प्रचलित थे और उनके सिद्धांत-सूत्र केवल संप्रदाय की गोप-

नीय संपत्ति के रूप में थे और दूसरे इन संप्रदायों में वर्ण की विषमता प्रमुख रूप से आलोचना का विषय नहीं बन सकी थी। कबीर ने पहली बार इस विषमता को प्रमुख रूप से समाज में तिरस्कार कर साम्य भाव का प्रचार किया और भक्ति के क्षेत्र में संस्कारों का तीव्र बहिष्कार करते हुए साधन मार्ग से उनका निष्कासन किया।

भक्ति के लिए समाजगत समस्त बंधनों को तोड़ कर कबीर ने साधना की समतल भूमि तैयार की जिसमें वे धार्मिक विश्वास का बीज बो सकते थे।

कबीर का जीवन वृत्त

कबीर के जीवन वृत्त के विषय में निश्चित रीति से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर के जितने जीवन वृत्त पाये जाते हैं उनमें एक तो तिथि आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा, दूसरे उन में बहुत सी अलौकिक घटनाओं का समावेश है। स्वयं कबीर ने अपने विषय में कुछ बातें कह कर ही सन्तोष कर लिया है। उनसे हमें उनकी जाति और व्यक्तिगत जीवन का परिचय-मात्र मिलता है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

कबीरपन्थ के ग्रन्थों में कबीर के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। उनमें कबीर की महत्ता सिद्ध करने के लिए उनसे गोरखनाथ[1] और चित्रगुप्त[2] तक से वार्तालाप कराया गया है। किन्तु उनकी जन्म-तिथि और

[1] कबीर गोरख की गोष्ठी, हस्तलिखित प्रति स० १८७० (ना० प्र० सभा)

[2] अमर सिंह बोध (कबीर सागर न० ४) स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित, पृष्ठ १८ (सम्वत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

जन्म के विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कबीर चरित्र बोध[1] ही में जन्म-तिथि के विषय में निर्देश किया गया है :

"कबीर साहब का काशी में प्रकट होना"

"सम्वत् चौदह सौ पचपन विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब में उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया।.. . उस समय अष्टानंद वैष्णव तालाब पर बैठे थे, वृष्टि हो रही थी, बादल आकाश में घिरे रहने के कारण अंधकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाब में उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग-जगमग करने लगा और बड़ा प्रकाश हुआ वह प्रकाश उस तालाब में ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहट से परिपूर्ण हो गईं ...।"

कबीरपंथियों मे कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है:

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि "गणना करने से संवत् १४५५ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।[2] गणना से संवत्

[1] कबीर चरित्र बोध (बोध सागर, स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित पृष्ठ ६, सम्वत् १९६३, खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई)

[2] कबीर-ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

१४५६ में चन्द्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पड़ती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ।"

किन्तु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को ज्येष्ठ पूर्णिमा नहीं पड़ती। चन्द्रवार के बदले मंगलवार दिन आता है।[१] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कबीर के जन्म के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोहे में 'बरसायत' पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानन्द ने 'बरसायत' पर एक नोट लिखा है :

"बरसाइत अपभ्रंश है बट सावित्री का। यह बट सावित्री व्रत ज्येष्ठ के अमावस्या को होता है इसकी विस्तार पूर्वक कथा महाभारत में है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीरपंथियों में बरसाइत महातम ग्रन्थ की कथा प्रचलित है। और उसी दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते हैं।[२]"

यह नोट श्री युगलानन्द जी ने अनुराग सागर में वर्णित "कबीर साहेब का काशी में प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

यह विधि कछुक दिवस चलि गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा॥
काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।

[१] Indian Chronology Part I, By Pillai

[२] अनुराग सागर (कबीर सागर नं० २) पृष्ठ ८६, भारत पथिक कबीरपंथी श्री युगलानन्द द्वारा संशोधित सं० १९६२
(श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई)

नारि गवन लाव मग सोई । जेठ मास बरसाइत होई ॥[1]

आदि

इस पद और टिप्पणी के अधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ । अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चंद्रवार पड़ता है या नहीं । यदि अमावस्या को चंद्रवार पड़ता है तब तो कबीर का जन्म संवत् १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होते हुए' मानना होगा । ऐसी स्थिति में दोहे का परिवर्ती भाग "पूरणमासी प्रगट भये" भी अशुद्ध माना जावेगा क्योंकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नहीं पड़ती वह अमावस्या को पड़ती है ।

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर हिज़ बायोग्रेफी' में इस किम्बदंती के दोहे का उल्लेख किया है । वे हिन्दी में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (सन् १९०२, पृष्ठ ५) का उल्लेख करते हुए सं० १४५५ (सन् १३९८) की पुष्टि करते हैं ।[2]

[1]वही, पृष्ठ ८६

[2]In a Hindi book Bharat Bhramana which has recently been published, the following verses are quoted in proof of the time when Kabir was born and when he died.

चौदह सौ पचपन साल गिरा चन्दु एक ठाट हुए ।
जेठ सुदी बरसाइत को पूरन मासी तिथि भए ॥
संवत् पन्द्रह सौ अर पाच मगहर कियो गमन ।
अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन ॥

This would then fix the birth of Kabir in 1398 and his death in A. D. 1448. (R. S. H. M.

मोहनसिंह के द्वारा दिए हुए नोट में 'गए' स्थान पर 'गिरा' है। ठीक नहीं कहा जा सकता कि 'गए' अथवा 'गिरा' शब्द से कौन सा शब्द ठीक है। लिखने में 'ए' और 'रा' में बहुत साम्य है। यदि 'गए' शब्द 'गिरा' से बन गया है तब तो १४५५ के बीत जाने (गए) की बात ही नहीं उठती। 'गिरा' 'पड़ने' के अर्थ में माना जायगा। अर्थात् सं० १४५५ का साल 'पड़ने' पर। किंतु यहाँ भी 'बरसाइत' और 'पूरनमासी' की प्रतिद्वन्द्विता है।

इस दोहे की प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके लेखक का भी विश्वस्त रूप से पता नहीं। कबीर ग्रंथावली के सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है:

"यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है।"[1] किंतु विद्वान् सम्पादक के इस कथन में प्रामाणिकता नहीं पाई जाती। "कहा हुआ बताया जाता है" कथन ही सन्देहास्पद है। अतएव हम अपना कथन 'अनुराग सागर' के आधार पर ही स्थिर करना चाहते हैं जिसमें केवल यही लिखा है:

नारि गवन आव मग सोई। जेठ मास वरसाइत होई[2]॥

बील अपनी ओरिएन्टल बायोग्रेफिकल डिक्शनरी[3] में कबीर का जन्म सन् १४६० (संवत् १५४७) स्थिर करते हैं और उन्हें सिकन्दर

1902, page 5)

Kabir His Biography by Mohan Singh page, 19 foot note.

[1]कबीर ग्रन्थावली प्रस्तावना पृष्ठ १८

[2]अनुराग सागर पृष्ठ ८६

[3] An Oriental Biographical Dictionary by Thomas William Beale. London (1894) Page 204

लोदी का समकालीन मानते हैं। डाक्टर हन्टर अपने ग्रन्थ इन्डियन एम्पायर के आठवें अध्याय में कबीर का समय सन् १३०० से १४२० तक (संवत् १३५७ से १४७७) मानते हैं। बील और हन्टर अपने अनुमान में ११० वर्ष का अन्तर रखते हैं। जान ब्रिग्स सिकंदर लोदी का समय सन् १४८८ से १५१७ (संवत् १५४५ १५७४) मानते हैं। उनके कथनानुसार सिकन्दर लोदी ने २८ वर्ष ५ महीने राज्य किया।[1] जान ब्रिग्स ने अपना ग्रन्थ मुसलमान इतिहासकारों के हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर लिखा है, अतएव उनके कालनिर्णय के सम्बन्ध में शङ्का नहीं हो सकती। यदि बील के अनुसार हम कबीर का जन्म सन् १४९० में अर्थात् सिकंदर लोदी के शासक होने के दो वर्ष बाद मानें तो सिकंदर लोदी की मृत्यु तक कबीर केवल २६ वर्ष के होंगे। किंतु मृत्यु के बहुत पहले ही सिकंदर लोदी कबीर के सम्पर्क में आ गया था। यह समय भी निश्चित करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल सटीक[2] में प्रियादास की टीका में एक घनाक्षरी है जिसके अनुसार कबीर और सिकंदर लोदी का साक्षात्कार हुआ था। वह घनाक्षरी इस प्रकार है :

देखि कै प्रभाव, फेरि उपज्यो अभाव द्विज;
आयो पातसाह सो सिकन्दर सुनाव है।
विमुख समूह सग माता हूँ मिलाय लई,
जाय कै पुकारे "जू दुखायो सब गाँव है"॥

[1] 'History of the Rise of the Muhammedan Power in India By John Briggs, page 589.

[2] भक्तमाल सटीक 'सीतारामशरण भगवान प्रसाद
प्रथम बार, लखनऊ (सन् १९१३)

ल्यावो रे पकर वाको देखौं मैं मकर कैसो,
अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनाव है।
आन ठाढ़े किये, क़ाज़ी कहत सलाम करौ;
जाने न सलाम, जानैं राम गाढ़े पाँव है॥

इस धनाक्षरी के नीचे सीतारामशरण भगवानप्रसाद का एक नोट है :

यह भाव देख कर के ब्राह्मणों के हृदय में पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश में जान कर बादशाह सिकंदर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे। श्री कबीर जी की मा को भी मिला के साथ मे लेके मुसलमानों सहित बादशाह की कचहरी में जाकर उन सब ने पुकारा कि कबीर शहर भर में उपद्रव मचा रहा है आदि"[1]

इससे ज्ञात होता है कि जब सिकंदर लोदी आगरे से काशी आया, उस समय वह कबीर से मिला। इतिहास से ज्ञात होता है कि सिकंदर लोदी बिहार के हुसेनशाह शरकी से युद्ध करने के लिए आगरे से काशी आया था। जान ब्रिग्स के अनुसार यह घटना हिजरी ६०० [अर्थात् सन् १४९४] की है।[2]

[1] भक्तमाल, पृष्ठ ४७०

[2] Hoossein Shah Shurky accordingly put his army in motion and marched against the King. Sikandar on hearing of his intentions, crossed the Ganges to meet him; and the two armies came in sight of each other at a spot distant 18 coss (27 miles) from Benares.

यदि कबीर सन् १४६४ में सिकंदर लोदी से मिले होंगे तो वे उस समय बील के अनुसार केवल ४ वर्ष के रहे होंगे। उस समय उनका इतनी प्रसिद्धि पाना कि वे सिकंदर लोदी की अप्रसन्नता के पात्र बन सकें, सम्पूर्णतया असम्भव है। अतएव बील के द्वारा दी हुई तिथि भ्रमात्मक है।

व्ही० ए० स्मिथ ने कबीर की कोई निश्चित तिथि नहीं दी। वे अंडर हिल द्वारा दी हुई तिथि का उल्लेख मात्र करते हैं।[1] वह तिथि है सन् १४४० से १५१८ (अर्थात् संवत् १४६७ से १५७५)। यह समय सिकंदर लोदी का समय है और कबीर का इस समय रहना प्रामाणिक है।

अतः कबीर की जन्म-तिथि किसी ने भी निश्चित प्रकार से नहीं दी। बाबू श्यामसुंदरदास के अनुसार प्रचलित दोहे के आधार पर ज्येष्ठ पूर्णिमा, चन्द्रवार सवत् १४५६ और अनुराग सागर के आधार पर ज्येष्ठ अमावस्या सवत् १४५५ कबीर की जन्म तिथि है। ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् १४५६ को चंद्रवार नहीं पड़ता अतएव यह तिथि अनिश्चित है ऐसी परिस्थिति में हम कबीर की जन्म-तिथि ज्येष्ठ आमावस्या संवत् १४५५ ही मानते हैं। कबीरपंथियों में भी ज्येष्ठ बरसाइत संवत् १४५५ मान्य है जो अनुराग सागर द्वारा स्पष्ट की गई है।

History of the Rise of the Mohammedan Power in India by John Briggs. M. R. A. S. London (1829) Pages 571-72

[1] Miss Underhill dates Kabir from about 1440 to 1518. He used to be placed between 1380 and 1420.

The Oxford History of India by V. A. Smith Page 261 (foot note).

कबीर की मृत्यु की तिथि भी सन्दिग्ध ही है।

इस सम्बन्ध में भक्तमाल में यह दोहा है

पन्द्रह सै उनचास में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदि एकादशी, मिले पौन मों पौन ॥[1]

इसके अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५४६ में हुई। कबीरपंथियों में प्रचलित दोहे के अनुसार यह तिथि स० १५७५ कही गई है :

सम्वत् पन्द्रह सै पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पौन मों पौन ॥[2]

सिकन्दर लोदी सन् १४९४ (सम्वत् १५५१) में कबीर से मिला था।[3] अतएव भक्तमाल के दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु तिथि अशुद्ध है। कबीर की मृत्यु संवत् १५५१ के बाद ही मानी जानी चाहिए।

नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर-ग्रंथावली का सम्पादन सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया गया है।[4] इस प्रति में वे बहुत से पद और साखियां नहीं हैं जो ग्रन्थ साहब में संकलित हैं। इस सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदास जी का कथन है: "इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह सम्वत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अन्दर बहुत-सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जो कि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन सम्वत् १५७५ में मान लिया

[1] भक्तमाल सटीक, पृ० ४७४

[2] कबीर कसौटी

[3] History of the Rise of the Mohammedan Power in India by John Brigges 571-72.

[4] कबीर ग्रन्थावली, भूमिका पृ० २।

जाता है तो यह बात असङ्गत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनन्तर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रन्थसाहब में सम्मिलित कर लिए गए हों।"[1]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पड़ता है। कबीरपंथियों के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्मतिथि सं० १४५५ और मृत्यु-तिथि सम्वत् १५७५ ठहरती है। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति में भी अभी तक संदेह है। कबीरपंथी तो उन्हें जाति से परे मानते है।[2] किन्तु किम्बदन्ती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानन्द का बड़ा भक्त था। एक बार श्री रामानन्द उस विधवा कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब भी रामानन्द ने अपना वचन नहीं लौटाया। आशीर्वाद के फल स्वरूप उस विधवा-कन्या के एक पुत्र हुआ जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाब के किनारे छिपा दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी नवविवाहिता स्त्री नीमा को लेकर जा रहा था। नवजात शिशु का सौन्दर्य देखकर उन्होंने उसे उठा लिया और उसका अपने पुत्र के समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे एक ब्राह्मण विधवा के पुत्र थे।

[1]कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ २१।

[2]है अनाम अविचल अविनाशी, अकह पुरुष सतलोक के वासी ॥
श्री कबीर साहब का जीवन चरित्र (श्री जनकलाल) नरसिंहपुर (१६०५)

महाराज रघुराजसिंह की "भक्तमाला रामरसिकावली" में भी इस घटना का उल्लेख है पर कथा में थोड़ा सा अन्तर आ गया है।[1] कुछ कबीरपंथियों का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या के पुत्र नहीं थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिये वे कर वीर (हाथ के पुत्र) अथवा (कर वीर का अपभ्रंश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोड़ती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की संतान थे तो यह बात लोगों को ज्ञात कैसे हुई? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपाकर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों किया? रामानन्द के आशीर्वाद से तो कलङ्क-कालिमा की आशंका भी नहीं हो-

[1]रामानन्द रहे जग स्वामी। ध्यावत निसदिन अन्तरयामी ॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी ॥
प्रभू एक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिग आई ॥
प्रभुहि कियो वदन विन दोषा। प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा ॥
तव तिय अपनो नाम वखाना। यह विपरीत दियो वरदाना ॥
स्वामी कह्यो निकसि मुख आयो। पुत्रवती हरि तोहिं वनायो ॥
ह्वै है पुत्र कलंक न लागी। तव सुत ह्वै है हरि अनुरागी ॥
तव तिय-कर फुलका परि आयो। कछु दिन में ताते सुत जायो ॥
जनत पुत्र नभ वजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा ॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढी जुलाहिन तहँ एक रूरी ॥
सो वालकहिं अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी ॥
लालन पालन किय वहुभाँती। सेयो सुतहिं नारि दिन राती ॥
भक्तमाला रामरसिकावली

सकती थी। इस प्रकार कबीर की यह कलङ्क कथा निर्मूल सिद्ध होती है। इस कथा के उद्गम के तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह है कि इससे रामानन्द के प्रभुत्व का प्रचार होता है। वे इतने प्रभावशाली थे कि अपने आशीर्वाद से एक विधवा-कन्या के उदर से पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि कबीर के पंथ में बहुत से हिंदू भी सम्मिलित थे। अपने गुरु को जुलाहा की हीन और नीच जाति से हटा कर वे उनका सम्बन्ध पवित्र ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। और तीसरा कारण यह है कि कुछ कट्टर हिंदू और मुसलमान जो कबीर की धार्मिक उच्छृङ्खलता से क्षुब्ध थे वे उन्हें अपमानित और कलंकित करने के लिये उनके जन्म का सबन्ध इस कलंक-कथा से घोषित करना चाहते थे।

कबीर के जन्म संबंध में प्राप्त हुए कुछ प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि वे ब्राह्मण विधवा की सतान न होकर मुसलमानी कुल में ही पैदा हुए थे। सबसे अधिक प्रामाणिक उद्धरण हमें आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब में मिलता है। उक्त ग्रंथ मे श्री रैदास के जो पद संग्रहीत हैं, उनमें एक पद इस प्रकार है:

मलारबाणीभगतरविदासजीकी
१ओसतिगुरप्रसाद॥ ....॥३॥१॥

मलारबाणी भगत रविदास जी की
१ओ सतगुरु प्रसाद ॥... ....॥३॥१॥
मलार ॥ हरि जपत तेऊ जना पदम कवलासपति ता सम तुलि नहीं आन कोऊ। एक ही एक अनेक अनेक होइ बिसथरिओ आनरे आन भरिपूरि सोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकै भगवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा ॥ बिआस महि लेखीऐ सनक महि पेखीऐ नाम की नामना सपत दीपा ॥१॥ जाकै ईदि बकरीद कुल गऊ रे बधु

मलार ॥ हरिजपततेऊजनापदमकवलासपतितासमतुलिनहींश्रानकोऊ॥ एकहीएकअनेकअनेकहोहिबिसथरिओश्रानरेश्रानभरपूरिसोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकैभागवतुलेखीऔअवरुनहीपेखीऔतासकीजातिश्राछोपछीपा । विश्रासमहिलेखीऔसनकमहिपेखीऔनामकीनामनासपतदीपा ॥१॥

जाकैईदिवकरीदिकुलगऊरेवधुकरहिमानीअहिसेखसहीदपीरा ॥ जाकै बापवैसीकरीपूतऔसीसरीतिहूरेलोकपरसिधकबीरा ॥ २ ॥ जाकेकुटुम्बकेढेढ सबढोरढोवंतफिरहि अजहुँबनारसीश्रासपासा । श्राचारसहितबिप्रकरहिडंडउतितिनितनैरविदासानुदासा ॥ ३ ॥ २ ॥

रैदास के इस पद में नामदेव, कबीर और स्वय रैदास का परिचय दिया गया है। नामदेव छीपा (दर्जी) जाति के थे। कबीर जाति के मुसलमान थे जिनके कुल में ईद बकरीद के दिन गऊ का वध होता था जो शेख शहीद और पीर को मानते थे। उन्होंने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनों लोकों में यश की प्राप्ति की। रैदास चमार जाति के थे जिनके वंश में मरे हुए पशु ढोये जाते हैं और जो बनारस के निवासी थे।

आदि श्री गुरु ग्रन्थ के इस पद के अनुसार कबीर निश्चय ही मुसलमान वंश में उत्पन्न हुए थे। आदि ग्रन्थ का सम्पादन संवत् १६६१ में हुआ था। सिक्खों की धार्मिक ग्रथ होने के कारण इसके पाठ में

करहि मानीअहि सेख सहीद पीरा ॥ जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥२॥ जाके कुटुम्ब के ढेढ सब ढोर ढोवत फिरहि अजहु बनारसी आसपासा ॥ आचार सहित विप्र करहि डंडउति तिनि तनै रविदास दासानुदासा ॥३॥२

आदि श्री गुरुग्रथसाहिब जी, पृष्ठ ६६८

भाई मोहन सिंह वैद्य, तरनतारन (अमृतसर)

१७अगस्त १९२७, बुधवार

अणुमात्र भी अन्तर नहीं हुआ। निर्देगित आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब गुरुमुखी में लिखे हुए इसी ग्रन्थ की अविकल प्रति है।[1] इस प्रकार यह प्रति और इसका पाठ अत्यन्त प्रामाणिक है। इसी प्रमाण का आधार श्री मोहनसिंह ने भी कबीर की जाति के निर्णय करने में लिया है।[2]

दूसरा प्रमाण सद्गुरु गरीबदासजी साहिब की बाणी[3] से प्राप्त

[1]इस दशा और त्रुटि को देखते हुये श्री सतगुरु जी की प्रेरना से यदि सेवा करने का उतसाह दास को हुआ और आदि में भेटा भी अती अलप लागत से भी बहुत कम रखने का द्रिड़ विचार और ऐसा ही वरताव किया गया। फिर यहि विचार हुआ कि शब्द के स्थान पर शब्द तथा और हिंदी शब्द या पद हिंदी की लेखन प्रणाली के अनुसार लिखे जावें या यथा तथ्य गुरुमुखी के अनुसार ही लिखे जावें ? इस पर बहुत विचार करने से यही निश्चय हुआ कि महान पुरुषों की तर्फ से जो अक्षरों के जोड़ तोड़ मंत्र रूप दिव्य बाणी में हुआ करते हैं उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्व साधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परन्तु उनके पठन पाठन में यथा तथ्य उच्चारन से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार अनुसार ही यह हिन्दी बीड़ गुरुमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात केवल गुरुमुखी से अक्षरों के स्थान हिन्दी (देव नागरी) अक्षर ही किये गये हैं

वही ग्रन्थ, प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १

[2]Kabir His Biography, By Mohan Singh Pub Atma Ram and Sons, Lahore 1934.

[3]श्री सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की वाणी, सम्पादक अजरानन्द गरीबदासी रमताराम आर्य सुधारक छापाखाना, बड़ोदा।

७ ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै,
यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥[१]

८ गुरु प्रसाद साध की संगति,
जग जीतैं जाइ जुलाहा ॥[२]

कबीर के छठवें उद्धरण से तो यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व कर्मानुसार ही उन्हें जुलाहे के कुल में जन्म मिला। "भया" शब्द इस अर्थ का पोषक है।

कबीर बचपन से ही धर्म की ओर आकर्षित थे। वे भजन गाया करते थे और लोगों को उपदेश दिया करते थे पर 'निगुरा' (बिना गुरु-के) होने के कारण लोगों में आदर के पात्र नहीं थे और उनके भजनों अथवा उपदेशों को भी कोई सुनना पसंद नहीं करता था। इस कारण वे अपना गुरु खोजने की चिंता में व्यस्त हुये। उस समय काशी में रामानन्द की बड़ी प्रसिद्धि थी। कबीर उन्हीं के पास गये पर कबीर के मुसलमान होने के कारण उन्होंने उन्हे अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। वे हताश तो बहुत हुए पर उन्होंने एक चाल सोची। प्रातः काल अंधेरे ही में रामानन्द पंचगङ्गा घाट पर नित्य स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर पहले से ही उनके रास्ते में घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। रामानन्द जैसे ही स्नानार्थं आए वैसे ही उनके पैर की ठोकर कबीर के सिर में लगी। ठोकर लगने के साथ ही रामानन्द के मुख से पश्चात्ताप के रूप में 'राम' 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर ने उसी समय उनके चरण पकड़ कर कहा, महाराज, आज से आपने मुझे राम नाम से दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया। आज से आप मेरे गुरु हुए। रामानन्द ने प्रसन्न हो कबीर को हृदय से लगा लिया। उसी समय से कबीर रामानन्द

[१] कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ २२१
[२] " " "

के शिष्य कहलाने लगे। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रन्थावली में लिखा है :

"केवल किंवदंती के आधार पर रामानन्द को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानन्द जी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिर कर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता। और यदि रामानन्द जी की मृत्यु संवत् १४५२ ५३ के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिए अभी तीन चार वर्ष रहे होंगे।"[1]

बाबू साहिब ने यह नहीं लिखा कि रामानन्द की मृत्यु की तिथि उन्होंने किस प्रामाणिक स्थान से ली है। नाभादास के भक्तमाल की टीका करनेवाले प्रियादास के अनुसार रामानन्द की मृत्यु सं० १५०५ विक्रमी में हुई इसके अनुसार रामानन्द की मृत्यु के समय कबीर की अवस्था ४६ वर्ष की रही होगी। उस अवस्था में या उसके पहिले कबीर क्या कोई भी भक्त घूम-फिर कर उपदेश दे सकता है और रामानन्द का शिष्य बन सकता है। फिर कबीर ने लिखा है :

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चिताए।

कुछ विद्वानों का मत है कि शेख़ तक़ी कबीर के गुरु थे।[2]

पर जिस गुरु को कबीर ईश्वर से भी बड़ा मानते थे उस गुरु शेख़ तक़ी के लिये वे ऐसा नहीं कह सकते थे :

[1]कबीर ग्रन्थावली, भूमिका पृष्ठ २५।
[2]Kabır and the Kabır Panth, Westcott, page 25.

होता है। इसमें 'पारख का अंग ॥४२॥ के अंतर्गत कबीर साहब की जीवन चरित्र दिया हुआ है। प्रारम्भ में ही लिखा है:

गरीब सेवक होय करि उतरे इस पृथ्वी के माहि
जीव उधारन जगत गुरु बार बार बलि जाँहि ॥३८०॥
गरीब काशी पुरी कस्त किया, उतरे अधर उधार।
मोमन को मुजरा हुआ, जगल मैं दीदार ॥३८१॥
गरीब कोटि किरण शशि भान सुधि, आसन अधर विमान।
परसत पूरण ब्रह्म कूँ, शीतल पिंड प्राण ॥३८२॥
गरीब गोद लिया मुख चूँबि करि, हेम रूप झलकंत।
जगर मगर काया करै, दमकैं, पदम अनंत ॥३८३॥
गरीब काशी उमटी गुल भया, मोमन का घर घेर।
कोई कहै ब्रह्म विष्णु है, कोई कहै इन्द्र कुबेर[1] ॥३८४॥

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान (मोमिन) ही को दर्शन देकर उसके घर में जन्म ग्रहण किया और मोमिन ने शिशु कबीर का मुँह चूम कर उसके अलौकिक-रूप के दर्शन किये। इस अवतरण से भी कबीर की ब्राह्मण विधवा से उत्पन्न होने की किम्वदन्ती गलत हो जाती है। सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की वाणी भी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाना चाहिये क्योंकि वह संवत् १८६० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित किया गया है[2]।

---

[1] वही ग्रंथ, पृष्ठ १६६

[2] यह ग्रन्थ साहिब हस्तलिखित विक्रम संवत् १८६० मिति वैसाख मास का लिखा हुआ मेरे को ग्राम [illegible] जिला रोहतक में मिला हुआ [illegible] लेना छापा है जिसको प्रत्यक्ष लिखा हुआ ग्रंथ साहिब देखना हो वह [illegible] में श्री [illegible] व्यायाम शाला प्रो० माणेकराव

इन दो प्रमाणों से कबीर का मुसलमान होना स्पष्ट है। इन्होंने अपनी जुलाहा जाति का परिचय भी स्पष्ट रूप से अनेक स्थानों पर दिया है:

१ तनना बुनना तज्या कबीर,
राम नाम लिख लिया शरीर ॥[1]

२ जुलहै तनि बुनि पान न पावल,
फारि बुनी दस ठाईं हो ॥[2]

३ जाति जुलाहा मति कौ धीरे,
हरिषि हरिषि गुण रमै कबीर ॥[3]

४ तूं ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा,
चीन्हि न मोर गियाना ।[4]

५ जाति जुलाहा नाम कबीरा,
बनि बनि फिरौं उदासी ।[5]

६ कहत कबीर मोहि भगत उमाहा;
कृत करणीं जाति भया जुलाहा ॥[6]

के यहाँ कायम के लिये रखा गया है सो सब वहाँ से देख सकते हैं
अजरानद गरीब दासी
वाणी की प्रस्तावना

[1]कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारणी सभा) इ० प्रेस प्रयाग १९२८, पृ० ६५.

[2]वही पृ० १०४

[3] " " १२८

[4] " " १७३

[5] " " १८१

[6] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १८१

घट घट है अविनाशी सुनहु तकी तुम शेख

हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि वे शेख़ तक़ी के सत्संग में रहे हों और उनसे उनका पारस्परिक व्यवहार हो !

कबीर का विवाह हुआ था अथवा नहीं, यह सन्देहात्मक है। कहते हैं कि उनकी स्त्री का नाम लोई था। वह एक वनखंडी वैरागी की कन्या थी। उसके घर पर एक रोज़ सन्तों का समागम था। कबीर भी वहाँ थे। सब सन्तों को दूध पीने को दिया गया। सबने तो पी लिया, कबीर ने अपना दूध रखा रहने दिया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि एक सन्त आ रहा है, उसके लिए यह दूध रख दिया गया है। कुछ देर में एक सन्त उसी कुटी पर पहुँचा। सब लोग कबीर की शक्ति पर मुग्ध हो गये। लोई तो भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह इनके साथ रहने लगी। कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते है, कोई शिष्या। कबीर ने निस्सन्देह लोई को सम्बोधित कर पद लिखे हैं। उदाहरणार्थ :

कहत कबीर सुनहु रे लोई
हम तुम बिनसि रहेगा सोई

सम्भव है, लोई उनकी स्त्री हो पीछे सन्त-स्वभाव से उन्होंने उसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने अपने गार्हस्थ्य-जीवन के विषय में भी लिखा है :

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार

कहते हैं लोई से इन्हें दो सन्तान थीं। एक पुत्र था कमाल, और दूसरी पुत्री थी कमाली। जिस समय ये अपने उपदेशों से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उस समय सिकंदर लोदी तख़्त पर बैठा था। उसने कबीर के अलौकिक कृत्यों की कहानी सुनी। उसने कबीर को बुलाया और जब उसने कबीर को स्वयं अपने को ईश्वर कहते पाया तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंका, पर वे साफ़ बच गये, तलवार से काटना चाहा पर

तलवार उनका शरीर बिना काटे ही उनके भीतर से निकल गई। तोप से मारना चाहा पर तोप में जल भर गया। हाथी से चिराना चाहा पर हाथी डर कर भाग गया।

ऐसे अलौकिक कृत्यों में कहाँ तक सत्यता है, यह संभवतः कोई विश्वास न करे पर महात्मा या संतों के साथ ऐसी कथाओं का जोड़ना आश्चर्य-जनक नहीं है।

मृत्यु के समय कबीर काशी से मगहर चले आए थे। उन्होंने लिखा है :

सकल जनम शिवपुरी गँवाया
मरति बार मगहर उठि धाया

यह विश्वास है कि काशी में मरने से मोक्ष मिलता है, मगहर में मरने से नर्क। पर कबीर ने कहा :

जो काशी तन तजै कबीरा
तौ रामहि कौन निहोरा

वे तो यह चाहते थे कि यदि मैं सच्चा भक्त हूँ तो चाहे काशी में मरूँ चाहे मगहर मे, मुझे मुक्ति मिलनी चाहिए। यही विचार कर वे मगहर चले गये। उनके मरने के समय हिन्दू मुसलमानों में उनके शव के लिए झगड़ा उठा। हिन्दू दाह-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। कफ़न उठाने पर शव के स्थान पर फूल-राशि दिख-लाई पड़ी जिसे हिन्दू मुसलमानों ने सरलता से अर्ध भागों में विभाजित कर लिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों सन्तुष्ट हो गये।

कविता की भाँति कबीर का जीवन रहस्य से परिपूर्ण है।

कबीर का महत्त्व

हर्ष का मृत्युकाल (सन् ६४७ ई०) भारतीय समाज के इतिहास में एक बड़ी विभाजक रेखा का कार्य करता है। शंकराचार्य के अभ्युदय से ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान तो हुआ पर कुछ बाह्य और अंतरंग कारणों से वह अधिक काल तक स्थित न रह सका। वह धीरे धीरे बहुत कुछ रूपांतरित सा हो गया। मुसलमानों के आक्रमण के प्रथम भारतवर्ष पर शक-हूण आदि कितने ही विदेशियों के आक्रमण हुए थे। इन विदेशियों के कुछ व्यापक, धार्मिक एवं सामाजिक सिद्धांत न होने के कारण ये शीघ्र ही हिंदूधर्म के साथ एक हो गए और कुछ काल में इनका अपना भिन्न अस्तित्व भी न रह गया। किंतु मुसलमानी सभ्यता का जन्म अपनी एक विशेष शक्ति के आधार पर हुआ था। इनका प्रवेश विजेता के रूप में हुआ तथा मुस्लिम शासक और हिंदू जनता की कुछ विरोधशील प्रवृत्ति के कारण वे एक न हो सके। इतिहासकार स्मिथ लिखता है कि १४ वीं शताब्दी में कुछ प्रलोभन तथा भय के कारण उत्तरी भारत की अधिकांश जनता मुसलमान हो गई थी। मुस्लिम शासक की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण हिंदुओं में समाज-संस्कार को अधिक नियमित करने की आवश्यकता बढ़ी। इसके परिणाम स्वरूप वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, छुआ-छूत की जटिलता तथा परदे की प्रथा हैं। १४ वीं शताब्दी में भारतीय समाज की अशांति के इन बाह्य कारणों के अतिरिक्त कुछ विशेष कारण भी थे। प्राचीन भाषा अब नवीन रूप धारण कर चुकी थी। धार्मिक साहित्य की समस्त रचना संस्कृत में ही हुई थी। इस दृष्टि से धार्मिक अध्ययन ब्राह्मण-पण्डितों तक ही सीमित हो गया था और साधारण जनता धार्मिक ज्ञान से बहुत दूर हो गई थी। जिस प्रकार यूरोप में लूथर के पूर्व १५ वीं शताब्दी में पोप ही धर्म के स्तम्भ समझे जाते थे उसी प्रकार कबीर के पूर्व धार्मिक ज्ञान पूर्णरूप से ब्राह्मणों के आश्रित

था। साधारण जन की शान्ति के लिये कोई आश्रय न था। साथ ही शासकों की निरंकुश नीति के कारण राजनीतिक असंतोप की मात्रा भी बहुत बढ़ी थी। मोहम्मद तुगलक के शासन काल से ही व्यवस्था अनियमित हो गई थी और सन् १३९८ ई० का तैमूर का आक्रमण तो उत्तरी भारत के लिये अराजकता और हिंसक प्रवृत्ति का सीमान्त उदाहरण था।

ऐसी ही अव्यवस्थित स्थिति में रामानन्द और कबीर का उदय हुआ था। प्रसिद्ध इतिहासकार 'बकले' का कहना है कि युग की बड़ी विभूतियाँ काल-प्रसूत होती हैं। कबीर के विषय में तो यह बात पूर्णरूप से स्पष्ट है। जनता की धर्मान्धता तथा शासकों की नीति के कारण कबीर के जन्मकाल के समय में हिन्दू मुसल्मान का पारस्परिक विरोध बहुत बढ़ गया था। धर्म के सच्चे रहस्य को भूल कर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर दोनों जातियां धर्म के नाम पर अधर्म कर रही थीं। ऐसी स्थिति में सच्चे मार्ग के प्रदर्शन का श्रेय कबीर को है। यद्यपि कबीर के उपदेश धार्मिक सुधार तक ही सीमित हैं तथापि भारतीय नवयुग के समाज सुधारकों में कबीर का स्थान सर्व प्रथम है क्योंकि भारतीय धर्म के अंतर्गत दर्शन, नैतिक-आचरण एवं कर्मकाण्ड तीनों का समावेश है।

कबीर के पहले भी हिन्दू समाज में कितने ही धार्मिक सुधारक हुए थे पर उनमें अप्रिय सत्य कहने का बल अथवा साहस नहीं था। हिन्दू जन्म से ही अधिक धर्म-भीरु होता है। यह उसकी जातीय दुर्बलता है। दूसरों की धार्मिक नीति का स्पष्ट विरोध करना मुस्लिमधर्म का एक विशेष अंग है। इन्हीं दोनों परस्पर प्रतिकूल सभ्यता के योग से कबीर का उदय हुआ था जिनका प्रधान उद्देश्य इन दो सरिताओं को एकमुख करना था। कबीर की शिक्षा में हमें हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है। यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी।

कबीर की विशेषता इन्हीं धार्मिक पाखण्डों का स्पष्ट शब्दों में विरोध कर, सत्यानुमोदन करने की है। कबीर ने निश्चय किया कि हिन्दू मुस्लिम विरोध का मूल कारण उनका अंधविश्वास है। धर्म का मार्ग संसार के कृत्रिम भेद-भावों से बिल्कुल रहित है। 'कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना। आपस में दोउ लरि लरि मूये मरम न काहू जाना।'[1] वास्तव में भारतीय समाज में बन्धुत्व के ये भाव कबीर द्वारा ही सर्व प्रथम व्यक्त किए गए थे। भक्तिभाव के आन्दोलन द्वारा भगवान के सामने सम भाव का आदेश तो रामानन्द ने भी दिया था पर जाति-विभाग और ऊँच-नीच भाव के एकीकरण का साहस कबीर के पहले किसी ने भी नहीं किया था। सच्चा सुधारक समाज में नये मार्ग का प्रदर्शन करने की अपेक्षा अंधविश्वास में पड़े हुए मनुष्यों को तर्क द्वारा जागृत करना अधिक आवश्यक समझता है। कबीर स्वाधीन विचार के व्यक्ति थे। काशी में हिन्दू धर्म के प्रधान केन्द्र में कबीर के सिवा और कौन साहस कर पूछ सकता था कि 'जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाये, और राह तुम काहे न आये?' यदि काली और सफेद गाय के दूध में कोई अंतर नहीं होता तो फिर उस विश्व वंद्य की सृष्टि में जाति-कृत भेद कैसा! "कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिये।" सत्य तो यह है कि सभी परमेश्वर की संतान हैं "को ब्राह्मण को शूद्रा।"

कबीर की यही समदृष्टि उन्हें सार्वभौमिक बना देती है। स्मरण रखना चाहिये कि भक्तियोग के उत्थान के साथ कितने अन्य महात्माओं ने भी शूद्रों को स्वीकार किया था परन्तु 'जाति-विभाग हेय और हानिप्रद है' ऐसी घोषणा करने का साहस कबीर के पहले किसी ने भी नहीं किया था।

[1] कबीर वचनावली, द्वितीय खण्ड १८२

इसी जाति-विभाग के नियम-पालन में छुआछूत का प्रश्न और भी जटिल हो गया था। हिन्दू मुसलमान दोनों ने अपने विशेष सामाजिक संस्कार बना लिये थे। साथ ही धर्म के दार्शनिक तत्वों की अवहेलना भी ख़ूब हो रही थी। धर्म का रूप केवल बाह्य-कृत्यों तक ही सीमित था। कारण यह था कि पंडितों और मुल्लाओं की प्रधानता एव उनकी संकुचित विचार धारा के कारण आडम्बर की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। विशेषता तो यह थी कि इन सभी आचारों का अनुमोदन कुरान, पुराण आदि धार्मिक पुस्तकों के नाम से किया जाता था। कबीर ने देखा कि शास्त्र पुराण आदि की कथाओं से लोग धर्म के सच्चे तत्व को भूल गए हैं। यह सब "झूठे का बाना" है। मनुष्य भूल कर आडम्वर के फेर में पड़ गया है। "सुर नर मुनी निरंजन देवा सब मिलि कीन्ह एक बंधांना, आप बधे औरन को बांधे भव सागर का कीन्ह पयाना" बात सत्य थी पर रूखे तौर पर कही गई थी। थोड़े से शब्दों में यह अप्रिय सत्य था जिसके वक्ता और श्रोता दोनों दुर्लभ होते है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने वास्तविक ज्ञान-राशि वेद, कुरान आदि को हेय समझा था परन्तु उनका कहना तो यह था कि बिना समझे इनका आश्रय लेना अज्ञानता है। उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया है कि "वेद कितेब कहो मत झूठे, झूठा जो न विचारे।" काशी गया, द्वारका आदि की यात्रा से कोई भी तात्पर्य नहीं है। मनुष्य को पहले निष्कपट होना चाहिए। उनका परिधान रँगा हुआ है हृदय नहीं। कबीर के समय मे हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक विरोध के कारण धर्म के बाह्याडम्वरों की वहुत वृद्धि हो गई थी। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार परमात्मा विश्वव्यापी है। सूफी सिद्धान्त भी इसी मत का प्रतिपादन करता है। पर जनता मूल सिद्धान्त को भूल गौण को मुख्य मान कर विरोध कर रही थी। विश्वव्यापी का निवास कोई पूर्व और कोई पश्चिम मे बताता था। मुसलमान बांग देकर अपने ईश्वर को स्मरण करने में

ही अपना महत्व समझता है। पुराणों के अनुसार कितने ही मार्ग प्रतिपादित हैं। धर्म ग्रन्थ अनन्त हैं फिर उनके द्वारा प्रतिपादित मार्गों की सीमा नहीं। सभी अपना राग अलापते हैं। कबीर ने देखा कि इस एकात्मता के पीछे अनेकरूपता का रूपक देकर अकारण ही विरोध बढ़ाया गया है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि महादेव और मोहम्मद में कोई भेद नहीं है। राम और रहीम पर्य्यायवाची हैं। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी उस परवरदिगार के बन्दे हैं। "हिन्दू तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै बताई। कहै कबीर सुनो हो सन्तो राम न कहेउ खोदाई।"

इस प्रकार कबीर ने अपने समय में धार्मिक पाखण्ड एवं कुरीतियों को दूर कर पारस्परिक विरोध को हटाने का सफल परिश्रम किया। सरल जीवन, सत्यता, स्पष्ट व्यवहार आदि उनके उपदेश हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों धार्मिक बनते हैं। कबीर का कहना है "इन दोउन राह न पाई।" एक बकरी काटता है, दूसरा गाय। यह पाखण्ड नहीं तो और क्या है? कबीर ने समसामयिक प्रवाह देखकर हिन्दू मुसलमान दोनों के आडम्बर-मूलक व्यवहार का घोर बिरोध किया। उन्होंने अपने विचार की पुष्टि के लिये किसी विशेष ग्रन्थ का आश्रय नहीं लिया। यह हो सकता है कि इसके मूल में उनके पुस्तक-ज्ञान का अभाव रहा हो पर उन्होंने इतना तो स्पष्ट देखा कि इन्हीं धर्म ग्रंथों का आश्रय लेकर हिन्दू मुसलमान अन्याय कर रहे हैं। फिर जो बात सत्य है उसकी वास्तविकता ही प्रधान आधार है। उनका तो कथन था कि

"मैं कहता हूँ आँखिन देखी।
तू कहता कागद की लेखी।"

प्रश्न हो सकता है कि कबीर अपने कार्य में कितने सफल हो सके हैं। सच तो यह है कि संसार की महान विभूतियों को जनता अपने अज्ञानवश ठुकरा देती है। युग प्रवर्त्तक महात्माओं को अपनी शिक्षा के

अनुमोदित न होने का सदा दुःख रहा है। सुकरात, क्राइस्ट सभी इस अज्ञान जनता के शिकार हुए हैं। कबीर का सन्देश कृत्रिम भेद भाव रहित विश्व प्रेम मूलक था यद्यपि वह विश्वव्यापी न हो सका।

भारतीय शिक्षित समाज पर प्रत्यक्ष रूप से कबीर का प्रभाव बहुत कम पड़ा परन्तु एक बात हिन्दुओं और मुसलमानों में समान रूप से व्याप्त हो गई। सब का भगवान एक है और सब भगवान के बन्दे हैं। जो हरि की वन्दना करता है वह हरि का दास है। परम पद की प्राप्ति के लिए प्रेम ही वांछनीय है; कोई विशेष सम्प्रदाय, जाति अथवा शिक्षा नहीं। इस विषय की कितनी ही सूक्तियाँ आज उत्तरी भारत के गांवों में कबीर के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों कबीर का महत् पद स्वीकार करते हैं। भारतीय समाज के इतिहास में भी कबीर के इस भाव का प्रभाव प्रत्यक्ष लक्षित होता है। कबीर की मृत्यु के पश्चात् मुस्लिम शासन-काल में भी प्रायः तीन शताब्दी तक हिन्दू मुस्लिम धर्म सम्बन्धी अनाचार की कोई घटना नहीं मिलती। प्रत्युत अकबर कालीन मुग़ल शासन में हिन्दू मुस्लिम सम्पर्कता-सम्बन्धी कितने ही उदाहरण मिलते हैं। इतिहासकार इसके बहुत से कारण बताते हैं परन्तु उन सभी कारणों में हिन्दू मुस्लिम-विरोध के मूल-स्वरूप सामाजिक अंध विश्वास को मिटाकर समता का उपदेश देने वाले कबीर का प्रादुर्भाव विशेष विचारणीय है। इतिहास लेखक प्रायः इस विषय की अवहेलना कर देते हैं परन्तु इसका प्रभाव हम गांवों में देख सकते हैं जहां आज भी हिन्दू मुस्लिम भेदभाव का कोई स्पष्ट रूप नहीं दिखलाई पड़ता। छूआछूत का तो बहुत कुछ अभाव ही है और साथ ही दोनों एकरूप से समता, सरल जीवन, ज्ञान तथा संतुष्टि के कितने ही पद प्रेम से गाया करते हैं। कबीर ने शताब्दियों की संकुचित चित्तवृत्ति को परिमार्जित कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अधिक उदार बना दिया है। यही उनकी विशेषता है। उन्होंने समाज में क्रान्ति सी उत्पन्न कर दी थी। धर्म के नाम पर

किए गए अनाचार का विरोध कर जन साधारण की भाषा द्वारा समाज को जागृत करने में कबीर का स्थान सर्व प्रथम है।

कबीर के समय में साहित्य की परिस्थिति

परिवर्तन काल

मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिन्दुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी। यदि मुसलमान केवल लूट-मार कर ही चले जाते तब भी हिन्दुओं की शान्ति में क्षणिक बाधा ही पड़ती किन्तु जब मुसलमानों ने भारत को अपनी सम्पत्ति मानकर उस पर शासन करना प्रारम्भ किया तब हिन्दुओं के सामने अपने अस्तित्व का प्रश्न आ गया। मुसलमान जब अपनी सत्ता के साथ अपना धर्म-प्रचार करने लगे तब तो परिस्थिति और भी विषम हो गई। हिन्दुओं में मुसलमानों से लोहा लेने की शक्ति नहीं थी। वे मुसलमानों को न तो पराजित कर सकते थे और न अपने धर्म की अवहेलना ही सहन कर सकते थे। इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था। उन्होंने तलवार के स्थान पर माला का आश्रय लिया और वीरत्व के स्थान पर क्षमा और संतोष का। वे ईश्वरीय शक्ति और अनुकम्पा पर विश्वास रखने लगे। कभी कभी यदि वीरत्व की चिनगारी भी कहीं दीख पड़ती थी तो वह दूसरे क्षण ही बुझ जाती थी, या बुझा दी जाती थी। इस प्रकार दुष्टों को दंड देने का कार्य उन्होंने ईश्वर पर ही छोड़ दिया और वे सांसारिक वस्तु स्थिति से परे पारलौकिक और आध्यात्मिक वातावरण में ही विहार करने लगे। इस समय हिन्दू राजा और प्रजा दोनों के विचार इसी प्रकार भक्तिमय हो गए और वीरगाथा काल की वीर रसमयी प्रवृत्ति धीरे धीरे शान्त और शृङ्गार रस मे परिणत होने लगी।

राजाओं का राजनीतिक दृष्टिकोण अस्पष्ट और धुँधला हो गया अतएव वे अपनी महत्वकांक्षा और आदर्श के उच्च आसन पर स्थिर न रह सके। उनके आदर्शों में परिवर्तन होने के कारण चारणों के आश्रय का भी कोई स्थान नहीं रह गया। वे अब किसकी वीर गाथा गाते और किसे रण के लिए उत्साहित करते! अत. वे भी अपने क्षेत्र से हटने लगे। फल यह हुआ कि डिंगल साहित्य की गतिविधि में भी परिवर्तन आने लगा। उसकी नियमित रचना मे वाधा पड़ने लगी और वह साहित्यिक गौरव से गिरने लगी। परम्परागत डिंगल भाषा केवल नाम के लिए व्यवहारिक भाषा रह गई, उसका साहित्यिक महत्त्व समकालीन साहित्य के लिए सम्पूर्णतः नष्ट हो गया।

डिंगल साहित्य की अवनति

साहित्य में धार्मिक भावना का प्राधान्य होने के कारण धर्म सम्बन्धी साहित्य की रचना की सम्भावना अधिक हो गई। इस समय ब्रज भाषा विकास पर थी। उसी में ऐसे साहित्य के सृजन का सूत्रपात्र आरम्भ हुआ। डिंगल भाषा ऐसे साहित्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। वह रण की भाषा थी, उसमें मारू बाजा का नाद था, उसमें धर्म की कोमल भावना का प्रस्फुटन नहीं हो सकता था। उसके लिए ब्रजभाषा के समान ही मधुर भाषा की आवश्यकता थी। अतएव उसी में साहित्य-रचना होने लगी। यद्यपि इस समय ब्रजभाषा में कृष्ण साहित्य की रचना का आरम्भ नहीं हुआ था किन्तु निम्बार्क के मत से प्रभावित होकर जयदेव के गीत गोविन्द की ध्वनि भाषा साहित्य की ओर अग्रसर हो चुकी थी। मैथिल कोकिल विद्यापति शैव होते हुए भी राधाकृष्ण के शृंगार में अपनी लेखनी को दीक्षित कर चुके थे। उन्होंने गीत गोविन्द के स्वरों में ही अपनी पदावली की रचना प्रारम्भ कर दी थी। यद्यपि विद्यापति ने राधाकृष्ण के चरणों में भक्ति की श्रद्धाञ्जलि समर्पित नहीं की तथापि वे उनके गुण वर्णन में सम्पूर्ण

धार्मिक काल का आरम्भ

रूप से लीन हैं। कुमारस्वामी के अनुसार तो उनकी रचनाओं में आध्यात्मिक अभिव्यञ्जना है पर विद्यापति का विद्यार्थी उन्हें

कृष्ण साहित्य

भक्त कहने के लिए तैयार न होगा। उन्होंने राधाकृष्ण का पारस्परिक विलास यौवन की बेसुध लेखनी से लिखा है। उनकी वयः संधि और अभिसार में शृंगार रस की समस्त मादकता केन्द्रीभूत है। भक्ति तो कामदेव की शर शैया पर पड़ी हुई तड़प रही है। विद्यापति को हम आध्यात्मिक कवि कैसे कह सकते हैं! यदि उनकी कविता में भक्ति का वह रूप होता जो धार्मिक काल में विकसित हुआ तो हम उन्हें धार्मिक काल का प्रथम कवि कहते।

रामानन्द के प्रभाव से राम-भक्ति भी प्रचार पा रही थी पर उस क्षेत्र में अभी कोई कवि नहीं हुआ था। यों तो रामानन्द ने स्वयं हिन्दी में कुछ स्फुट रचनाएं की हैं पर रामसाहित्य के उज्ज्वल

रामसाहित्य

भविष्य की सूचना देने वाली कोई लेखनी नहीं थी। तुलसीदास की प्रतिभा के सूर्य की लाली भी साहित्य के क्षितिज पर दृष्टिगोचर नहीं हुई थी।

मुसलमानी शासन के दो प्रभाव इस समय दृष्टिगोचर होने लगे थे। एक तो मुसलमानी धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार और दूसरा मुसलमानी विलासिता से प्रादुर्भूत मनोरंजक साहित्य। जब

सूफ़ी मत

मुसलमानों ने भारत को अपनी ही भूमि मान लिया तब वे अपने धर्म के प्रचार के साथ साथ यहाँ के धर्म को समझने की चेष्टा भी करने लगे। फलस्वरूप सूफ़ीमत के प्रचार होने का मार्ग खुला। उन्होंने धर्म के विचारों को स्पष्ट रूप से रखने के लिए हिन्दू कथाओं का आधार लिया। इस प्रकार आख्यानक काव्य की सृष्टि हुई। हिन्दू वातावरण से पोषित प्रेम कहानियों के सहारे उन्होंने अपना सूफ़ी मत प्रचार करने का प्रयत्न किया। वे अवधी भाषा और दोहे चौपाई छंद को सरलता में मसनवी के ढंग पर अपनी भावनाओं को

स्पष्टता के साथ रखने लगे। इस प्रकार की मृगावती और मधुमालती रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

सूफी साहित्य के साथ साथ मुसलमानों की विलासप्रियता के लक्षण भी स्पष्टता के साथ सामने आने लगे। अमीर ख़ुसरो की मुकरी और पहेलियों ने मनोरंजक साहित्य की सृष्टि की। वीर गाथाकाल की संध्या में यह मनोरंजन की लालिमा स्वाभाविक और प्राकृतिक होते हुए भी अरुचिकर थी क्योंकि ख़ुसरो की पहेलियों में न तो साहित्यिक गांभीर्य था और न किसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन। उसमें केवल कल्पना को गुदगुदाने की सामग्री थी। खाना खा कर हुक्का पीते समय की विनोदप्रियता ही उसमें है। उसमें शृंगार भी है तो वह मर्यादा रहित और नग्न। उससे कुछ देर के लिए हँसी भले ही आ जाय पर जीवन में जागृति नहीं आ सकती।

मनोरंजक साहित्य
पहेलियाँ, मुकरियां

इसी समय पूर्व में गोरखनाथ के पंथ का प्रचार हो रहा था। गोरखनाथ का समय हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने सं० १४०७ माना है। पर मराठी साहित्य के ज्ञानेश्वरी नामक ग्रंथ से उनका समय सं० १४०७ बहुत पहले निकलता है। ज्ञानेश्वरी के रचयिता ज्ञानेश्वर महाराज के पितामह श्री त्र्यंबक पंत अपने परिवर्ती काल में गोरखनाथ के समकालीन थे और उन्हीं से दीक्षित हुए थे। त्र्यंबक पंत ने सं० १२७० के लगभग गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया था। अतएव गोरखनाथ का समय सं० १२७० के आसपास ही माना जाना चाहिए। इस आधार पर उनका आविर्भावकाल विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के मध्य में मानना चाहिए।

हठयोग

गोरखनाथ के द्वारा प्रचारित हठयोग ईश्वर की प्राप्ति के साधन का प्रधान रूप माना जाता था। पतंजलि के योग को सब से अधिक आकर्षक रूप में प्रचार करने का श्रेय गोरखनाथ को ही है। गोरखनाथ ने अपने

सिद्धांतों के प्रचार के लिए एक अलग पंथ चलाया जिसके अनुयायी 'कनफटे' कहलाते हैं क्योंकि ये अपने कान में स्फटिक का बड़ा कुंडल पहने रहते हैं। गोरखनाथ के हठयोग का आधार कबीर ने ईश्वर प्राप्ति में विशेष रूप से लिया है। कबीर के समय में हठयोग का प्रचार एक प्रधान पंथ के रूप में था।

यह गोरख पंथ शैव और योग शास्त्र का मिश्रण है। पतंजलि तथा उपनिषदों में जो महत्त्व योगाभ्यास एवं शरीर के चक्र, वात, पतन और श्वास सम्बन्धी रहस्यवादी सिद्धात को दिया गया है, उससे बिल्कुल स्पष्ट है कि कनफटा पथ तथा योग मे घनिष्ठ सम्बंध है।

गोरख बोध के प्रमाणानुसार 'पवन' का निवास नाभि चक्र है। तथा इसका आधार शून्य है जो सर्वत्र फैला हुआ है। पवन 'मनस्' की पुष्टि करता है जिसका निवास हृदय है। 'मनस्' चन्द्रमा के द्वारा प्रभावित होता है जो कि आकाश (शून्य) में निवास करता है। 'पवन' सूर्य के, 'शून्य' काल के द्वारा प्रभावित होता है। एक दूसरा तत्त्व- 'शब्द' भी है जिसका निवास रूप मे है। हृदय, नाभि, रूप तथा आकाश की सृष्टि के पूर्व 'मनस्' शून्य में अन्तर्हित था, 'पवन' निराकार था, 'शब्द' रूपहीन था तथा 'चन्द्रमा' आकाश और पृथ्वी के मध्य में स्थित था। शून्य चार प्रकार है सहज, अनुभव, परम तथा अतीत शून्य। इसी अतीत शून्य में प्राण निद्रा या मृत्यु के समय विश्राम करता है। पाँच तत्त्व होते हैं जिनमें से एक निर्माण होता है, और द्वार दस होते हैं जो पूर्णता को प्राप्त करने के साधन हैं।

इससे यह प्रतीत होता है कि अध्यात्मिक समस्याओं के सुलझाने में जो कि तर्क द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती, गोरखनाथ ने भी रूपक का आश्रय लिया है जो अधिकांश उपनिषदों और विशेषकर पिछले उपनिषदों में पाये जाते हैं। ... गोरखनाथ के सिद्धान की सब से बड़ी विशेषता निस्सन्देह इसकी विश्व व्यापकता है। यह सभी जातियों के लिए खुला

हुआ है और इसमें खान-पान सम्बंधी कोई विशेष झंझट नहीं है। दोनों बातों में रामानन्द की वैष्णव प्रथा से इसकी समानता है। दोनों सम्प्रदायों की समानता इस बात से और भी बढ़ गई है कि दोनों ने अपने अपने सन्तों को सम्बोधित करने के लिए 'अवधूत' शब्द का प्रयोग किया है।[1]

मुसलमानी धर्म के सिद्धान्तों ने सूफ़ीमत के प्रचार के अतिरिक्त हिन्दू धर्म को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप संतमत की रूपरेखा निर्धारित हुई। मुसलमानों की प्रवृत्ति मूर्तिपूजा के एकान्त प्रतिकूल थी वे किसी भाँति भी ईश्वर को भौतिक रूप नहीं दे सकते थे। उनकी इस प्रवृत्ति ने संतमत के ब्रह्म को भी मूर्ति के रूप मे प्रकट नहीं होने दिया। मूर्तिपूजा से संबंध रखने वाली हिन्दुओं की प्रवृत्ति किसी प्रकार भी मुसलमानों को सह्य नहीं थी। वे मूर्ति तोड़ने वाले थे। अतएव हिंदू अपने धर्म को तिलाञ्जलि न देते हुए भी किस प्रकार हिंदू रह सकते थे यदि वे मूर्तिपूजा छोड़ देते। यह समस्या संतमत ने हल कर दी। इस मत के अनुयायी होकर वे इस कठिनाई से सुलझ सकते थे। कबीर इस मत के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने मुसलमान और हिन्दू धर्म के मूल सिद्धातों को लेकर अपने पंथ की कल्पना की। इसका ईश्वर एक था जिसके "मुख माथा" नहीं था। वह "पुहुप बास से पातरा" था, वह "निर्गुण सगुण से परे" था। ईश्वर का यह भाव सूफीमत और अद्वैतवाद में समान रूप से है। सूफीमत में 'बक़ा' के लिए 'फना' की आवश्यकता है। आध्यात्मिक जीवन के लिए संसार से मृतक बनकर रहना चाहिए। 'हक़' एक है और बन्दा (साधक) उसका ही रूप है उसकी व्याप्ति संसार के अणु अणु में है। शैतान बंदे को सत्पथ से हटा

[1] E. B E. VOL XII pp. 833-838

देता है। साधक को अपनी साधना में अनेक स्थितियां पार करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार अद्वैतवाद में माया ब्रह्म की शक्ति है। वही भिन्नता के आभास की जननी है।। संसार नाम-रूप मय है। वह मिथ्या है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उसका निर्माण कंचन और कामिनी से है। कबीर ने इन दोनों धर्मों के मूल सिद्धांतों से अपने पंथ की कल्पना की। इस कबीरपंथ में मुसलमानी धर्म की वे सभी बातें हैं जो हिंदूधर्म से मिलती जुलती हैं और उन सभी बातों का अभाव है जो मुसलमानी धर्म को असह्य हैं। इस प्रकार संतमत के रूप का बहुत कुछ श्रेय मुसलमानी धर्म को है।

साहित्यिक वातावरण

मुसलमानी धर्म के स्थापित हो जाने पर यदि साहित्य की परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसमें चारण-काल की वीर रसमयी स्फुट रचनाएँ दिनोंदिन कम होती जा रही थीं, यद्यपि उनका अस्तित्व अवश्य था। दूसरी ओर धार्मिक असंतोष के कारण राम और कृष्ण की भक्ति-संबंधी दो धाराएं प्रवाहित होने का मार्ग खोज रही थीं। ये साकारोपासना में ही अपना उद्देश्य लिए हुए थीं। इसके विपरीत सूफ़ी कवियों का आख्यानक काव्य और संतमत का एकेश्वरवाद निराकार भावना संबद्ध था। सुदूर पूर्व में हठयोग का प्रचार गद्य ग्रंथों में गोरख-नाथ और उनकी शिष्य मंडली के द्वारा किया जा रहा था और दिल्ली के राजसी वातावरण के बीच ख़ुसरो की पहेलियाँ सुलझाई जा रही थीं। इस प्रकार साहित्यक वातावरण एक प्रकार से अस्त व्यस्त था और उसमें विचार साम्य का एकान्त अभाव था।

कबीर के अनुसार संतमत का रूप

कबीर के आविर्भाव के समय रामानंद का प्रभाव उत्तरी भारत में संपूर्ण रूप से व्याप्त हो गया था। रामानंद के जन्म के विषय मे निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता पर भक्तमाल के अनुसार उनका जन्म प्रयाग में संवत् १३५६ विक्रमी में हुआ था। उनके पिता का नाम पुण्यसदन और माता का नाम सुशीला था। रामानद रामानुज सम्प्रदाय के थे और उन्होंने भारतवर्ष का अनेक बार पर्यटन कर अपने सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया।

श्री रामानुजाचार्य के अनुसार नारायण की उपासना ही मुख्य है। विष्णु के ऐसे उपासकों को अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। रामानुजाचार्य ने वैष्णव धर्म का लोकप्रिय रूप रखते हुए भी शूद्रों को अपने सम्प्रदाय से दूर ही रखा। रामानंद ने नवीन आदर्शों की स्थापना की। उन्होंने नारायण के स्थान पर राम की भक्ति पर ज़ोर दिया। उन्होंने राम भक्ति के दृष्टिकोण से ब्राह्मण और शूद्र को समान रूप से ग्रहण किया और संस्कृत के सिवाय हिन्दी में भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। रामानन्द के शिष्य कबीर पर इन बातों का बहुत प्रभाव पड़ा और संतमत की स्थापना में अधिकांश रूप से उन्हीं बातों का समावेश हो गया। इस प्रकार कबीर के विचारों से संतमत का जो रूप निर्धारित हुआ, उसमें रामानंद का बहुत बड़ा हाथ था। ईश्वर के लिए राम शब्द का प्रयोग (यद्यपि राम से तात्पर्य केवल अनादि ब्रह्म से था दशरथ सुत रामचंद्र से नहीं), जाति भेद का विनाश (जाति पांति पूछै नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई) और हिन्दी में काव्य-रचना, ये सभी बातें रामानंद के प्रभाव के कारण संतमत में आई हैं।

कबीर प्रथम संत थे जिन्होंने रामानंद के विचारों का प्रचार बड़ी

निर्भीकता से किया। वे जुलाहे के घर में पैदा हुए थे इसलिए मुसलमानी संस्कार भी उनके विचारों में स्थान पा गए थे। सम्भव है, इसी कारण वे राम को साकार ब्रह्म का रूप दे सकने में असमर्थ रहे। उन्होंने अपने गुरु का दिया हुआ राम नाम ब्रह्म को पुकारने में स्वीकार तो अवश्य कर लिया पर वे उसे किसी प्रकार भी व्यक्तित्व नहीं दे सके। राम निराकार ब्रह्म है जो निर्गुण और सगुण दोनों से परे है। वही राम रहीम है, वही राम गोविंद है। इसी प्रकार कबीर ने वैष्णवों के साकेत को भी अपनाया है। उसे कभी तो उन्होंने साकेत का ही नाम दिया है और कभी सत्यलोक का, यद्यपि वैष्णवों के साकेत और कबीर के साकेत अथवा सत्यलोक मे बहुत अंतर है। कबीर का साकेत सत्य-पुरुष का निवास है जो स्वयं मनुष्य के सहस्रदल कमल में है और जिसमें अनहद नाद होता रहता है। वैष्णवों का साकेत तो विष्णु का परम धाम है। कबीर ने वैष्णवों की भक्ति को ही अपने निराकार राम को प्रसन्न करने की सबसे सरल साधना समझी है। इस भक्ति में प्रेम का स्थान प्रधान है। कहा नहीं जा सकता कि कबीर की भक्ति में प्रेम का अंश वैष्णव धर्म से आया है, अथवा सूफीमत के इश्क से। प्रेम की अनन्यता तो दोनों मतों मे समान रूप से है।

कबीर ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का जो स्वरूप निर्धारित किया था प्रायः वही आगे चल कर संतमत के रूप में पल्लवित हुआ। अनेक संतों ने ईश्वर के स्वरूप-निरूपण में अपने विचारों की विशेषता अवश्य रक्खी है पर उनका आदि भाव कबीर के सिद्धान्तों से ही लिया गया है। कबीर का ईश्वर एक था। उसका रूप नहीं था, आकार नहीं था। इसका कारण या तो कबीर की स्वाभाविक मुसलमानी प्रवृत्ति ही थी अथवा तत्कालीन भारत का वायुमंडल था जो मुसलमानों की क्रूर प्रवृत्ति से इतना दूषित हो गया था कि हिन्दुओं को साकार रूप से भगवान की उपासना करते हुये भय मालूम होता था। ऐसे अवसर पर कबीर के

निराकार भाव के लिये वायुमण्डल अनुकूल ही था। बड़ी सरलता से उनके सिद्धान्त सारे उत्तर भारत में फैल गये।

एक बात इस संबंध में महत्व रखती है। कबीर ने अपने निर्गुण और सगुण[1] से परे ब्रह्म की प्राप्ति के लिए भक्ति को साधन माना है! निराकार भगवान् से संबंध जोड़ने में उपासना का ही प्रधान स्थान होना चाहिए भक्ति का नहीं। उपासना में प्रेम के स्थान पर श्रद्धा और भय रहता है उसमें यम नियम की कठोर साधना है, पर कबीर में अपने ब्रह्म के लिए भक्ति का विशेष स्थान है। वे अपने ईश्वर से प्रेम अधिक करते हैं।

ऐसी स्थिति में निराकार भावना का रूप स्पष्टता पाकर साकार में परिणत हो जाता है। निराकार तभी तक शुद्ध रह सकता है, जब तक उसमें उपासना का भाव अविच्छिन्न रूप से वर्तमान रहता है। उसमें श्रद्धा और भय को नियंत्रण करने वाली शक्तियाँ छिपी रहती हैं। जब उसमें भक्ति की कोमल भावना आ जाती है, प्रेम की प्रबल प्रवृत्ति समुद्र की भाँति विस्तृत रूप रखकर उठ खड़ी होती है तो निराकार का भाव बहुत कुछ साकार में परिवर्तित हो जाता है। उस भाव में व्यक्तित्व का आभास होने लगता है। ईश्वर प्रेम की प्रतिमूर्ति ही बनकर सामने आ जाता है। ऐसी स्थिति में निराकार ईश्वर केवल विश्व का नियंता न रह कर भक्तों के सुख दुःख में समान भाग लेनेवाला दृष्टि-गोचर होने लगता है। इस भावना का प्रचार संतमत में बड़े वेग से हुआ। उसका कारण यही था कि कबीर ने इसी भाव का अवलम्बन लिया। वे निराकार ईश्वर की उपासना न कर सके उन्होंने उसकी प्रेमपूर्ण भक्ति की। कबीर की यही बड़ी भूल थी। यदि उन्हें निराकार

[1] निर्गुण की सेवा करो सगुण को धरो ध्यान।
निर्गुण सर्गुण से परे, तहाँ हमारो ज्ञान॥

भावना से ईश्वर की आराधना करना था तो वे भक्ति और प्रेम से न करते। यदि वे भक्ति और प्रेम को नहीं छोड़ सकते थे तो उन्हें भगवान् की साकार भावना का प्रचार करना था। न तो वे निराकार की ठीक उपासना कर सके और न साकार की पूरी भक्ति ही। इस मिश्रण ने यद्यपि उनके विचारों को प्रचार पाने का अवसर दे दिया, पर ईश्वर की भावना का रूप बहुत अस्पष्ट रहा। न हम उसे निराकार एकेश्वर की उपासना ही कह सकते हैं और न साकार ईश्वर की भक्ति ही।[1]

कबीर सूफ़ियों के संसर्ग मे भी आए[2]। उन पर सूफ़ी धर्म का भी प्रभाव पड़ा। सूफीमत में आत्मा, (रूह) हृदय (क़ल्ब) और बुद्धि (अक्ल) की प्रधानता है। इन्द्रिय (नफ्स) का स्थान गौण है क्योंकि प्रथम तीन शक्तियाँ सन्मार्ग की ओर ले जाती हैं और चौथे कुमार्ग की ओर। इसीलिए इन्द्रिय निग्रह का आदेश सूफीमत में तीव्र स्वरों में है। आत्मा के साधन में चार परिस्थितियों की कल्पना है। नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत। लाहूत ही कबीर का साकेत या सत्यलोक है। सूफ़ीमत में एकेश्वरवाद की प्रधानता है। उस ईश्वर की प्राप्ति में प्रेम की बहुत बड़ी आवश्यकता है। ईश्वर की भावना स्त्री रूप में है। इसीलिए साधक की ओर से प्रेम की अनन्य भावना ईश्वर के प्रति प्रवाहित होती है।

सूफ़ीमत और हिन्दू धर्म के ब्रह्मवाद ने मिल कर कबीर को रहस्यवादी बना दिया। वे ईश्वर और अपने व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं

[1] हिन्दी गीतिकाव्य पृष्ठ ६४

[2] मानक पुरहि कबीर बसेरी मद्दति सुनी सेख़ तक्कि केरी।
ऊजी सुनी यवनपुर थाना, झूँसी सुनी पीरन को नामा।
एकइस पीर लिखे तेहि ठामा, खतमा पढ़ै पैगम्बर नामा।
बीजक रमैनी पृष्ठ २४

समझते थे। प्रेम के वशीभूत होकर वे अपनी आत्मा का विस्तार परमात्मा में और परमात्मा का विस्तार अपनी आत्मा में मानते थे। आत्मा और परमात्मा का यह मिलाप उन्हें 'अनलहक़' का स्वर देने में समर्थ था।

नैना नीझर लाइया रहट बसे निस जाम।
पपीहा ज्यू पिव पिव करौं कबरु मिलहुगे राम ॥[1]

यद्यपि इस दोहे में रहस्यवाद की प्रेरणा है तथापि व्यक्तित्व का बोध भी है जिसका अस्तित्व निराकार भावना मे हो ही नहीं सकता। इस प्रेम और विरह मे आत्म-समर्पण की भावना है दूसरी ओर शून्याकाश में निराकार की कल्पना है। इन दोनों में सामञ्जस्य नहीं हो सकता। शून्य ब्रह्म का जिसका कोई रूप नहीं है "विरह कौ अंग" वैसा ही है जैसा प्रेम के बिना अनुराग। प्रेम और भक्ति के आवेश में निराकार भी साकार हो जाता है और यही स्थिति संतमत के ब्रह्म की है। नाम के लिए ईश्वर निराकार और निर्गुण है पर उसकी आराधना सगुण की भांति की जाती है। दादू कहते है,

गोविन्द[2] के चरणों ही ल्यौ लाऊँ।
जैसे चात्रिग बन में बोलै पीव पीव करि ध्याऊँ • आदि

इस गोविन्द को कौन निराकार कहेगा ? निराकार के चरण कहां है ! वह तो "मुख माथा, रूप कुरूप" रहित है, वह "पुहुप बास ते पातरा अनूप तत्त" है। पर भक्ति की प्रधानता से निराकार संतमत में साकार के समान ज्ञात होने लगता है। कबीर भक्त थे पर साथ ही साथ निराकार और साकार से परे ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करनेवाले रहस्यवादी भी थे।

[1] कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ९।
[2] Hindi Selections Book IV Page 255.

कबीर ने सूफ़ीमत के विपरीत और हिंदू-धर्म के अनुसार ब्रह्म की कल्पना पुरुष रूप में की। आत्मा को स्त्री मान कर उन्होंने विरह और मिलन का चित्रण किया। इसी भावना के अंतराल में उनका रहस्यवाद है। यद्यपि संतमत में रहस्यवाद केवल कबीर तक ही सीमित रह गया—अन्य किसी कवि ने इस भावना तक पहुँचने की क्षमता प्रदर्शित नहीं की तथापि पुरुष ब्रह्म की भावना उसमें प्रारम्भ से लेकर अंत तक रही। कबीर ने ब्रह्मवाद से पुरुष ब्रह्म, माया और चिन्तन तथा सूफीमत से प्रेम लेकर अपने पथ की स्थापना की जिसके सहारे संतमत पल्लवित हुआ। साधना के दृष्टिकोण से भक्ति के अतिरिक्त कबीर ने हठयोग की क्रियाएँ भी लीं। यदि एक ओर कबीर कहते थे

कबीर हसणा दूरि करि करि रोवण सौं चित्त
बिन रोया क्यों पाइए, प्रेम पियारा मित्त[1]

तो दूसरी ओर वे कहते थे

सोलह कला संपूरण छाजा,
अनहद कै घरि बाजैं बाजा ॥
सुषमन कै घरि भया अनंदा,
उलट कंवल भेटे गोब्यंदा ॥[2]

इस प्रकार ईश्वराराधन में उन्होंने भक्ति के सिवाय हठयोग को भी विशेष स्थान दिया यद्यपि भक्ति और हठयोग में कोई समानता नहीं है।

कबीर के चलाए हुए संतमत में जो प्रधान प्रधान भावनाएं हैं उन पर विचार कर लेना आवश्यक है:

[1]कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ६।
[2]वही, पृष्ठ १५७

(१) ईश्वर

संतमत का ईश्वर एक है।[1] उसका रूप और आकार नहीं है।[2] वह निर्गुण और सगुण के परे है।[3] वह संसार के प्रत्येक कण में है। वही प्रत्येक की सांस में है! वह वर्णन नहीं किया जा सकता। वह केवल अनुभव-गम्य ही है।[4] वह ज्योति स्वरूप है। वह अलख और निरंजन है। वह सुरति-रूप है। उसकी प्राप्ति भक्ति और योग से हो सकती है। उसका नाम अक्षय पुरुष या सत्पुरुष है। उसी से संसार की उत्पत्ति है।[5] ईश्वर की प्राप्ति में गुरु का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। परमात्मा से मिलाने के कारण गुरु का स्थान स्वयं परमात्मा से ऊँचा है।

(२) माया

वह सत्पुरुष से उत्पन्न है। यह सृष्टि की सृजन शक्ति है। इसके दो रूप हैं, सत्य और मिथ्या।[6] सत्य माया तो महात्माओं को ईश्वर की प्राप्ति में सहायक है। मिथ्या माया संसार को ईश्वर से विमुख कराती

[1]मेरा साहब एक है दूजा कहा न जाय।
साहिब दूजा जो कहूँ साहब खरा रिसाय॥ "कबीर वचनावली'
[2]जाके मुख माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त अनूप॥ " "
[3]निर्गुण की सेवा करो सर्गुण को करो ध्यान'।' "
निर्गुण सर्गुण से परे तहाँ हमारो ज्ञान॥ " "
[4]पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान। " "
कहिवे कू सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥ " "
[5]अक्षय पुरुष इक वृक्ष है निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भये पात भया संसार॥ "कबीर वचना"
[6]माया के दुइ रूप है सत्य मिथ्या संसार—"कबीर परिचय" पृष्ठ २०५

है।[1] कबीर ने मिथ्या माया का ही अधिकतर वर्णन किया है। वह त्रिगुणात्मक है।[2] वह जन्म, पालन और संहार करनेवाली भी है।[3] अधिकतर वह संसार को सत्पथ से हटा कर कुमार्ग पर लाने वाली है। वह 'खांड' की तरह मीठी है[4] किन्तु उसका प्रभाव विष के समान है। उसने सारे संसार को अपने वश में कर रक्खा है।[5] उसका संबंध कनक और कामिनी से है।[6] संसार की जितनी ही आकर्षक और मोह में आबद्ध करने वाली वस्तुएँ[7] हैं वे सब माया की रस्सियाँ हैं। कबीर कहते हैं:

माया तजू तजी नहिं जाइ,
फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥
माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्मगियान ॥
माया रस माया. कर जान, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सब ही लोग ॥

[1]कबीर माया पापिणीं हरि सूँ करै हराम—"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ३२
[2]निरगुण फास लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी
माया महा ठगिनि हम जानी "कबीर के पद" पृष्ठ ३७
[3]माया के गुण तीन हैं, जनम पालन संहार
"कबीर परिचय" पृष्ठ २०४
[4]कबीर माया मोहिनी जैसे मीठी खांड।
सतगुर की किरपा भई नहीं तो करती भांड ॥
"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ २३
[5]कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तो फंधै पड़्या गया कबीरा काटि ॥"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ३२
[6]माया की झल जग जल्या, कनक कामिणीं लागि।
कहुधौं किहि विधि राखिये, रुई लपेटी आगि ॥ "कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ३५

माया जलथल माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यवहार, कहै कबीर मेरे राम अधार[1]।

(३) हठयोग

अंगों तथा श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुये (हठयोग) एवं मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर मनन करते हुए आत्मा समाधिस्थ हो ईश्वर में मिल जाती है। हठयोग का तात्पर्य बलपूर्वक ब्रह्म से मिल जाना है। शारीरिक और मानसिक परिश्रम के द्वारा ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करना ही हठयोग का आदर्श है। इसमें ८४ आसनों का विधान है।[2] इसके द्वारा ईश्वरीय चितन के लिए शरीर को तैयार करने का विचार है। इसके बाद प्राणायाम है अर्थात् श्वास और प्रश्वास की गति को नियमित करने का विधान है। इससे मन में एकाग्रता आती है और ईश्वर चिन्तन में सहायता मिलती है। रेचक, कुंभक और पूरब सांसों के द्वारा प्राणायाम की शक्ति जागृति होती है जिससे शरीर के अतर्गत मूलाधार चक्र से कुंडलिनी चैतन्य होती है। मेरु दण्ड के समानान्तर सुषुम्णा नाडी के विस्तार में मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र को पार कर कुंडलिनी ब्रह्माण्ड मे स्थित सहस्रदल कमल का स्पर्श करती है जिससे अनहदनाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है।[3] सहस्रदल कमल में स्थित चन्द्र से गंगा रूप

[1] "कबीर ग्रन्थावली" पृष्ठ ११५

[2] चतुरशीत्यासनानि सन्ति नाना विधानि च।
"शिव संहिता" तृतीय पटल, श्लोक ८४

[3] उलटे पवन चक्र षट वेधा सुनि सुरति लै लागी।
अमर न मरै मरै नहिं जीवै, ताहि खोजि बैरागी ॥
"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ६१

पिङ्गला नाड़ी में अमृत का प्रवाह होता है और मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य से यमुना रूप इडा नाडी में विष का प्रवाह होता है। शरीर में गंगा और यमुना के सारे अमृत और विष का प्रवाह निरंतर होता है। जो योगी हैं वे विष का प्रवाह रोक कर अपने शरीर को अमृतमय कर लेते हैं और हजारों वर्षों तक जीवित रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा पंच प्राणों की साधना में कुंडलिनी जो सर्प समान के मूलाधार चक्र में सोती है, और जो अपनी ही ज्योति से आलोकित है, हठयोग में महत्त्वपूर्ण शक्ति है। इसी हठयोग को कबीर ने ईश्वर-प्राप्ति का एक साधन माना है।

(४) सूफीमत

सूफीमत का प्रभाव संतमत पर यथेष्ट पड़ा है। सूफीमत में बन्दे और खुदा का एकीकरण है। उसमें माया के लिए कोई स्थान नहीं है, हाँ, शैतान की स्थिति अवश्य मानी गई है, जो बन्दे को भुलावा देकर कुमार्ग पर ले जाता है। खुदा से मिलने के लिए बन्दे को अपनी रूह का परिष्करण करना पड़ता है। उसके लिए चार दशाएँ मानी गई हैं:

१ शरीयत २ तरीक़त ३ हक़ीक़त ४ मारिफत।

मारिफ़त में रूह 'बक़ा' (जीवन) प्राप्त करने के लिए 'फ़ना' हो जाती है। इस 'फना होने में इश्क (प्रेम) का बहुत बड़ा हाथ है। बिना इश्क़ के बक़ा की कल्पना ही नहीं हो सकती। इसी 'बक़ा' में रूह अपने को 'अनलहक' की अधिकारिणी बना सकती है।[१] इस अनलहक में रूह आलमे 'लाहूत' की निवासिनी बनती है। लाहूत के पहले अन्य तीन जगतों में आत्मा अपने को पवित्र बनाने का प्रयत्न करती है। उसे

[१] हम चु बूदनि बूद खालिक गरक हम तुम पेस।
"कबीर ग्रथावली" पृ० १७७

हम परिष्करण की स्थिति (Purgatory) कह सकते हैं। वे तीन जगत है आलमे नासूत (सत्-भौतिक-संसार) आलमे मलकूत (चित् संसार) और आलमे जबरूत (आनन्द संसार) । 'लाहूत" में हक़ (ईश्वर) से समीप्य होता है जो सदैव एक है।

(५) रहस्यवाद

कबीर ने अद्वैतवाद और सूफीमत के मिश्रण से अपने रहस्यवाद की सृष्टि की। इसमें आत्मा परमात्मा से मिलकर एक स्वरूप धारण करती है। दोनों में कोई भिन्नता नहीं होती। इस रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता है। यह प्रेम पति पत्नी के संबंध ही में पूर्णता को पहुँचता है। इसलिए कबीर ने आत्मा को स्त्री रूप देकर परमात्मा रूपी पति की आराधना की है। जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती तब तक आत्मा विरहिणी के समान दुःखी होती है। जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है तब रहस्यवाद के आदर्श की पूर्ति हो जाती है। दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता "जब वह (मेरा जीवन तन) 'दूसरा' नहीं कहलाता तो मेरे गुण उसके गुण हैं। जब हम दोनों एक हैं तो उसका बाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि है बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलवानेवाले को उत्तर देती है और कह उठती है "लब्बयक" (जो आज्ञा) । वह बोलती है मानो मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, उसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानों वह ही उसे कहती है। हम लोगों के बीच में से मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज से बहुत ऊपर उठ गया हूँ।"[1]

कबीर ने ईश्वर की उपासना में अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से

[1] The Idea of Personality in Sufism Page 20.

पतिव्रता स्त्री माना है।[1] वे परमात्मा से मिलने के लिए बहुत व्याकुल हैं। परमात्मा से विरह का जीवन उन्हे असह्य है।[2] कबीर का रहस्यवाद बहुत ही भावमय है। उसमे परमात्मा के लिए अविचल प्रेम है। जब उसकी पूर्ति होती है तो कबीर की आत्मा एक विवाहिता पत्नी की भाँति पति से मिलाप करने पर प्रसन्न हो उठती है।[3] इस प्रकार के विरह और मिलन के पदों में ही कबीर ने अपने रहस्यवाद की उत्कृष्ट सृष्टि की है। सन्तमत के अन्य कवियों ने भी इसी रहस्यवाद पर लिखा है, पर उनमें वह अनुभूति नहीं है जो कबीर में है।

(६) रूपक

कबीर ने अपनी अनुभूति को अनेक प्रकार से प्रकट किया है। जब उनके विचार साधारण भाषा में प्रकट नहीं किए जा सकते थे तब वे किसी रूपक का सहारा लिया करते थे। ये रूपक कभी कभी तो बिल्कुल ही अस्पष्ट होते थे जिनका अर्थ लगाना केवल उन्हीं से साध्य था जो कबीर पंथी थे अथवा कबीर के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित थे। भाव-

[1]बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुम मिलन कूं मनि नाहीं विश्राम॥
"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ८

[2]कै बिरहिनि कूं मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणा मोपैं सह्या न जाय॥
"कबीर ग्रथावली" पृष्ठ १०

[3]दुलहिनीं गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भतार॥
"कबीर ग्रथावली" पृष्ठ ८७

सौन्दर्य और भावोन्माद साधारण शब्दों में उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसीलिए कबीर ने अनेक चित्रों की सृष्टि की। इसे अंग्रेजी कवियों ने 'रूपक भाषा'[१] नाम दिया है।

कबीर ने इन रूपकों को विशेष कर दो रूपों में बांधा है। एक तो उलटबाँसी का रूप है जिसमें स्वाभाविक व्यापारों के विपरीत कार्य की कल्पना की जाती है।[२] और दूसरा रूप है आश्चर्यजनक घटनाओं की सृष्टि।[3] इन दोनों का संबंध रहस्यवाद से है। शरीर में अनन्त परमात्मा की अनुभूति वैसी ही है जैसे नाव में नदी का डूब जाना और परमात्मा से मिलन का आनन्द वैसा ही है जैसे सिंह का पान कतरना। इन रूपकों से यद्यपि भावना स्पष्ट नहीं हो पाती पर अनुभूति की अभिव्यक्ति अवश्य हो जाती है। कबीर इन्हीं रूपकों के कारण कहीं कहीं अस्पष्ट हो गए हैं पर हमें उन रूपकों में कबीर की अनुभूति को ही खोजने की चेष्टा करनी चाहिए।

नीचे तीन रूपकों के उदाहरण दिए जाते हैं :

(१) सतगुर है रंगरेज चुनर मेरी रंग डारी

शिष्य के ईश्वरत्व की अनुभूति के चरम सीमा में गुरु का क्या महत्व है—इसकी ओर इस पक्ति में सकेत किया गया है। संत काव्य के निर्गुण सिद्धान्त ने गुरु को बड़ा महत्त्व दिया है। रंगरेज़ कपड़े से

[१] The Language Symbols.

[२]पहले पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥
जल की मछरी तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगैं खाई ॥
"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ६१

[3]पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
"कबीर ग्रंथावली" पृष्ठ ९०

मैल साफ कर उसे ऐसे रंग में रँगता है कि पहनने वाले की दीप्ति और भी बढ़ जाती है ('पहनने वाले का' यहां आत्मा से अभिप्राय है) इसी प्रकार गुरु रहस्यमूलक ज्ञान की शिक्षा देता है और आत्मा ईश्वर के वास्तविक अनुभव रूपी अद्भुत रंग में रँग कर मंजीठ के समान लाल हो जाता है। इस रूपक का कबीर ने बार बार प्रयोग किया है। केवल इतना अन्तर हुआ है कि कभी कभी सतगुरु का प्रयोग मनुष्य के लिए न होकर स्वयं ईश्वर के लिए या दिव्य प्रकाश के लिए हुआ है जिससे दिव्य ज्ञान विकीर्ण होता है।

(२) कीट भृङ्ग की गति है साधो

भृङ्ग नाम का एक कीडा एक दूसरे कीड़े 'कीट' को पकड़ लेता है। उसके चारों ओर यह इस प्रकार से चक्कर लगाता है कि कीट 'कीट' नहीं रह जाता, किसी रहस्य से कीट भृङ्ग के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस रूपक का संकेत कबीर ने गुरु या साधु के सत्संगजनित प्रभाव की ओर किया है। भौतिक संसार के अन्धकार और धुंधले प्रकाश में फँसा हुआ मन सत्य की ओर अग्रसर नहीं हो सकता तथा ईश्वरत्व के उच्च पद को प्राप्त करना इसके लिये अत्यन्त कठिन है। सत्संग या गुरु जीवात्मा को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और अन्त में यह अद्भुत बात सम्भव होती है। मन वाह्योत्तेजन को छोड़ लोकोत्तर ज्ञान में लवलीन हो जाता है; इस प्रकार ईश्वरीय बोध से-परिचित सिद्ध के मन के समान हो जाता है जिसने कि सत्य का वास्तविक रूप समझा है।

(३) अठदल कँवल और अजपा जाप

इन पंक्तियों से साधक को योग सम्बन्ध दृष्टिकोण मिलता है। योगी विश्वास करते हैं कि 'सुषुम्णा' के समानान्तर 'षट चक्र' हैं; यदि कोई लोकोत्तर का नैसर्गिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो आध्यात्मिक महत्ता के इन केन्द्रों को उत्तेजित करना आवश्यक है।

इन केन्द्रों से निकले हुए दिव्य प्रकाश की किरण ही भक्त को आगे बढ़ने और अपने को ईश्वर की सत्ता में मिलाने के लिए उत्साहित करती है। जब आत्मा सुरति के आधार पर चल कर ईश्वरत्व को वास्तविक रूप में इतना समझ लेती है कि उसे पूर्ण वियोग का अनुभव होने लगता है तो उस समय कहा जा सकता है कि आत्मा को 'आध्यात्मिक लालसा' (Craving) है। भक्त की यात्रा में यह स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि हम ईश्वरत्व में मिलने के लिए जाना चाहें तो हमें इसी स्थिति से होकर जाना पड़ेगा। जब कि मनुष्य 'आध्यात्मिक लालसा' (Craving) दशा को प्राप्त हो जाता है तो किसी समाधि की आवश्यकता नहीं रह जाती। राम नाम का गान हृदय के प्रत्येक स्पन्दन के साथ होने लगता है। इसे निर्गुन संप्रदाय में अजपा जाप कहते हैं। यह आध्यात्मिक गति ही आत्मा में नाम की सृष्टि निरन्तर अव्यक्त रूप से करती है।

कबीर पदावली

ईश्वर से सम्बन्ध रखने वाले पद

अब मोहि जलत राम जलु पाइआ[1] ।
राम उदकि तनु जलत बुझाइआ ॥
मनु मारण कारणि[2] बन जाईऐ ।
सो जलु बिनु भगवंत न पाईऐ ॥१॥
जिह पावक सुरि नर है जारे ।
राम उदकि जन जलत उबारे ॥२॥
भव सागर सुख सागर माही ।
पीवि रहे जल निखुटत नाही ॥३॥
कहि कबीर भजु सारिंग पानी[3] ॥
राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ॥४॥

माधउ जल[4] की पियास न जाइ ।
जल महि अगनि[5] उठी अधिकाइ ॥
तू जलनिधि हउ जल का मीनु ।
जल महि रहउ जलहि बिनु खीनु[6] ॥१॥

[1]अब.....पाइआ अब राम रूपी जल ने मुझ जलते हुए को पा लिया है । [2]कारण । [3]सारग पाणि । [4]आनंद रूपी जल । [5]वासना की अग्नि । यहाँ बड़वाग्नि से तात्पर्य है । [6]जल ..खीनु यद्यपि मैं जल में रहते हुए भी जल से रहित हूँ ।

तूं पिंजरु हउ सूअटा[1] तोर ।
जमु[2] मजारु[3] कहा करै मोर ॥२॥
तूं तरवरु हउ पखी आहि ।
मदभागी तेरो दरसनु नाहि ॥३॥
तू सतिगुरु हउ नउ तनु[4] चेला ।
कहि कबीर मिलु अंत की वेला ॥४॥

पिंडि[5] मुऐ जीउ किह घरि जाता ।
सबदि अतीति अनाहदि[6] राता[7] ॥
जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ[8] ।
जिउ गूंगे साकरु मनु मानिया[9] ॥१॥
ऐसा गिआनु कथै बनवारी[10] ।
मनरे पवन द्रिड़[11] सुखमन[12] नारी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ।
सो पदु रवहु[13] जि बहुरि न रवना ॥
सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना ।
ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥
उलटी गंगा[14] जमुन[15] मिलावउ ।
बिनु जल संगम मन महि न्हावउ ॥
लोचा[16] समसरि[17] इहु बिउहारा[18] ।
ततु[19] बीचारि किआ[20] अवरि बीचारा ॥३॥

[1]शुक । [2]यम । [3]बिलाव । [4]नूतन, नवीन । [5]शरीर । [6]सबदि अतीति अनाहदि अतीत अनाहत शब्द । [7]लीन हो जाता है । [8]पहचानते हैं । [9]मन में प्रसन्न होता है । [10]ईश्वर । [11]दृढ़ । [12]सुषुम्णा । [13]रमण करो । [14]पिंगला नारी । [15]इड़ा नारी । [16]लोचारक नरक । [17]समान । [18]सांसारिक प्रपंच । [19]तत्त्व । [20]क्या ।

अपु[1] तेजु बाइ प्रिथमी अकासा ।
ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन धिआवहु ।
तितु घरिजा जि बहुरि न आवहु ॥४॥

अब मोकउ भए राजाराम सहाई ।
जनम मरन कटि[2] परम गति पाई ॥
साधू सगति दीओ रलाइ[3] ।
पंच दूत[4] ते लीओ छडाइ ॥
अंम्रित नामु जपउ जपु रसना ।
अमोल दासु करि लीनो अपना ॥१॥
सति गुरु कीनो पर उपकारु ।
काढि लीन सागर संसारु ॥
चरन कमल सिउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै निता नित चीत ॥२॥
माइआ[5] तपति बुझिआ अगि आरु[6] ।
मनि सतोखु नामु आधारु ॥
जलि थलि पूरि रहे प्रभु सुआमी ।
जत पेखेउ तत अंतरजामी ॥३॥
अपनी भगति आप ही द्रिड़ाई[7] ।
पूरब लिखतु[8] मिलिआ मेरे भाई ॥
जिसु क्रिपा करे तिसु पूरन साज ।
कबीर को सुआमी गरीब निवाज ॥४॥

[1]जल । [2]जनम मरन कटि जन्म और मरण के पाश काटकर । [3]लीन । [4]पांचो इन्द्रियाँ । [5]माया । [6]अङ्गार । [7]दृढ़ किया । [8]पूरब लिखतु पूर्व जन्म के संस्कार ।

सुतु अपराध करत है जेते ।
जननी चीति न राखति तेते ॥
रामईआ हउ बारिकु तेरा ।
काहे न खण्डसि अवगनु मेरा ॥१॥
ते[1] अति क्रोप करे करि धाइआ ।
ताभी चीति न राखसि माइआ ॥२॥
चित-भवनि[2] मनु परिओ हमारा ।
नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥३॥
देहि बिमल मति सदा सरीरा ।
सहजि-सहजि[3] गुन रवै कबीरा ॥४॥

अंतरि मैलु जे तीरथ नावै तिसु वैकुंठ न जाना ।
लोक पतीणे[4] कछू न होवै नाहीं रामु अयाना[5] ॥
पूजहु रामु एक ही देवा ।
साचा नावणु[6] गुरु की सेवा ॥१॥
जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि ।
जैसे मेंडुक तैसे ओइनर फिर फिरि जोनी आवहि ॥२॥
मनहु कठोरु मेरे बानारसि नरकुन बाचिआ जाई ।
हरि का संतु मेरे हाड़वै[7] त सगली सैन तराई[8] ॥३॥
दिन सुन रैनि बेदु नही सासत्र[9] तहा बसै निरङ्कारा ।
कहि कबीर नर तिसहिधि आवहु बावरिआ[10] संसारा ॥४॥

[1]बालक के लिए प्रयुक्त हुआ है । [2]चिंता का आवर्त्त । [3]स्वाभाविक रूप से । [4]विश्वास करे । [5]अनजान । [6]स्नान करना । [7]ऊँचा घोष करके । [8]हरि. . . . तराई यदि ऊँचा जय घोष करते हुए हरि का संत मर (और उसे मुक्ति हो जावे) तब तो सारी सेना जय घोष करते हुए (संसार-सागर से) तर सकती है । [9]शास्त्र । [10]पागल ।

दरमादे[1] ठाढ़े दरबारि ।
तुझ बिनु सुरति करै को मेरी दरसनु दीजै खोल्हि किवार ॥
तुम धन धनी उदार तिआगी[2] स्रवनन सुनीअतु सुजसु तुम्हार ।
मागउ काहि रङ्क सम देखउ तुमहीं ते मेरो निसतारु ॥१॥
जैदेउ[3] नामा[4] बिप[5] सुदामा तिन कउ क्रिपा भई है अपार ।
कहि कबीर तुम समथ[6] दाते चारि पदारथ देत न बार ॥२॥

तूं मेरो मेरु परबतु सुआमी[7] ओट[8] गही मैं तेरी ।
ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लेनी हरि मेरी ॥१॥
अब तब जब कब तुही-तुही[9] ।
हम तुअ परसाद सुखी सदही[10] ॥
तेरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपति बुझाई ।
पहिले दरसनु मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई ॥२॥
जैसा मगहरु तैसी कासी हम एकै करि जानी ।
हम निरधन जिउ इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥३॥
करै गुमानु चुभै तिसु सूला को काढन कउ नाही ।
अजै सुचोभ कउ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही[11] ॥४॥
कवनु नरकु किआ सुरगु बिचारा संतन दोऊ रादे[12] ।
हम काहू की काणि[13] न कढ़ेत अपने गुर परसादे ॥५॥

[1]श्रान्त, थके हुए । [2]त्यागी । [3]जयदेव । [4]नामदेव । [5]विप्र, ब्राह्मण । [6]समर्थ । [7]स्वामी । [8]शरण । [9]तुम ही तुम हो । [10]सदैव । [11]अजै पचाही=अभी तक (पूर्व जन्म की शूल की) तीखी चुभन से बिलबिला रहा हूँ । [12]आराधना की । 'दोऊ रादे' का तात्पर्य यह है कि संतों ने स्वर्ग नरक दोनों ही देख लिया (नरक संसार में तथा स्वर्ग ईश्वराराधन में) । [13]मर्यादा ।

अब तउ जाइ चढ़ सिघासनि मिले है सारिगपानी।
राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी ॥६॥

कवन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कवन फलु पाइआ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख[1] न इहु मनु लाइआ ॥
गोविंद हम ऐसे अपराधी।
जिनि प्रभि जीउ[2] पिंडु था दीआ। तिस की भाउ भगति नहीं साधी ॥१॥
परधन परतन परती[3] निंदा पर अपबादु न छूटै।
आवा गवनु होत है फुनि फुनि इहु पर संग न तूटै ॥२॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मैं फेरा।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥३॥
काम क्रोध माइआ मद मतसर ए संपै[4] मो माही।
दइआ धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि[5] नाहीं ॥४॥
दीन दइआल क्रिपाल दमोदर भगति बछल भै हारी।
कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउ तुम्हारी ॥५॥

बनहि बसे किउ पाईऐ जउ लउ मनहु न तजहि बिकार।
जिह घरु बनु समसरि कीआ ते पूरे संसार[6] ॥
सार सुखु[7] पाईऐ रामा।
रंगि रवहु आतमै राम[8] ॥१॥
जटा भसम लेपन कीआ कहा गुफा महि बासु।

[1]निमिष, क्षण। [2]प्राण। [3]परायी स्त्री। [4]सम्पत्ति। [5]स्वप्न में भी। [6]जिह ....संसार=संसार में उन्हीं का कार्य पूरा होता है जिन्होंने घर ही को बन के समान कर लिया है। [7]सार सुखु=वास्तविक सुख। [8]रंगि .....राम अपनी अन्तरात्मा के रङ्ग में रंग करही रमण करना चाहिए।

मनु जीते जगु जीतिआ जाते बिखिआ[1] ते होइ उदासु ॥२॥
अजनु देइ सभै कोई दुकु चाहन माहि बिडानु[2] ।
गिआन[3] अजनु जिह पाइआ ते लोइन परवानु[4] ॥३॥
कहि कबीर अब जानिआ गुरि गिआनु दीआ समझाइ ।
अंतरगति मेटिआ अब मेरा मनु कतहू न जाइ ॥४॥

रिधि सिधि जा कउ फुरी[5] तब काहू सिउ[6] किआ काज ।
तेरे कहने की गति किआ कहउ मैं बोलत ही बड़ लाज ॥
रामु जिह पाइआ राम ।
ते भवहि न[7] बारै बार ॥१॥
झूठा जगु डहके[8] घना दिन दुइ बरतन[9] की आस ।
राम उदकु[10] जिह जन पीआ तिहि बहुरि न भई पिआस ॥२॥
गुर प्रसादि जिह बूझिआ आसा ते भइआ निरासु[11] ।
सभु सचु नदरी[12] आइआ जउ आतम भइआ उदासु ॥३॥
राम नाम रसु चाखिया हरि नामा हर तारि[13] ।
कहु कबीर कचनु भइया भ्रमु गइआ समुद्रै पारि ॥४॥

एक समुद सलल की साखिया नदी तरंग समावहिगे[14] ।
सुनहि [15]सुनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे ॥

[1]विषय वासना । [2]पथ भ्रष्ट हो गए । [3]प्रमाण । [4]ज्ञान । [5]स्फुरित हो गई । [6]से । [7]संसार में नहीं आती है । [8]ठगता है । [9]उपभोग करना । [10]जल । [11]आसा . निरास=सांसारिक आशा निराशा में परिणत हो गई । [12]निडर होकर । [13]हर तारि=हरि ने तार दिया । [13]समा जावेंगे (हम ब्रह्म में) [14]शून्य । सुनहि . जावहिगे =समदर्शी होते हुए शून्य (ब्रह्म में) शून्य (अवस्था रहित आत्मा) को मिलाकर हम पवन के सदृश्य सूक्ष्म और अदृश्य हो जावेंगे ।

बहुरि हम काहे आवहिगे ।
आवन जाना हुकमु तिसै का हुकमै बूझि समावहिगे ॥१॥
जब चूकै पंच धातु की रचना[1] ऐसे भरमु चुकावहिगे ।
दरसनु छोड़ि भए समदरसी एको नामु धिआवहिगे ॥२॥
जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिगे ।
हरि जी क्रिपा करे जउ अपनी तौ गुर के सबदि समावहिगे ॥३॥
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनमु न होई[2] ।
कहु कबीर जो नामि समाने सुन[3] रहिआ लिव[4] सोइ ॥४॥

इहु धनु मेरे हरि के नाउ ।
गाठि न बाधउ बेचि न खाउ ॥
नाउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी ।
भगति करउ जनु सरनि तुम्हारी ॥१॥
नाउ मेरे माइआ[5] नाउ मेरे पूजी ।
तुमहि छोड़ि जानउ नहीं दूजी ॥२॥
नाउ मेरे बंधिप[6] नाउ मेरे भाई ।
नाउ मेरे संगि अंति होइ सखाई ॥३॥
माइया महि जिसु रखै उदासु[7] ।
कहि कबीर हउ ताको दासु ॥४॥

[1]पंच धातु की रचना=मनुष्य शरीर । [2]जीवत...होई=यदि जीवन ही में तुममें मरण (इन्द्रियों की शक्ति नष्ट) हो जावे और फिर उस मरण ही में जीवन (आध्यात्मिक की जागृति) हो जावे तो फिर तुम्हारा जन्म न होगा । [3]शून्य । (ब्रह्म) [4]लौ । [5]माया, सम्पत्ति । [6]बन्धु-बान्धव । [7]माइया . उदास=जो (अपने मन को) माया से उदास रखता है ।

गगा के सग सलिता बिगरी ।
सो सलिता गगा होइ निबरी[1] ॥
बिगरिओ कबीरा राम दुहाई ।
साचु भइओ अन कतहि न जाई ॥१॥
चदन के सगि तरवरु बिगरिओ ।
सो तरवरु चदनु होइ निबरिओ ॥२॥
पारस के संग ताबा बिगरिओ ।
सो ताबा कचनु होइ निबरिओ ॥३॥
सतन सग कबीरा बिगरिओ ।
सो कबीरु रामै होइ निबरिओ ॥४॥

गुर सेवा ते भगति कमाई ।
तब इह मानस देही पाई ॥
इस देही कउ सिमरहि[2] देव ।
सो देही भजु हरि की सेव ॥
भजहु गोबिद भूलि मति जाहु ।
मानस जनम का एही लाहु ॥१॥
जब लगु जरा रोगु नहीं आइआ ।
जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ[3] ॥
जब लगु बिकल भई नहीं बानी ।
भजि लेहि रे मन सारिंग पानी ॥२॥

[1]सो सलिता ' निबरी=(मैं कहता हूँ) वह नदी गगा ही होकर प्रवाहित हो गई । इन दृष्टान्तों के द्वारा कबीर यह बतलाते हैं कि वे राम में मिलकर स्वर्ण के सदृश शुद्ध हो गए । [2]अभिलाषा करते हैं । [3]काया ।

माया से सम्बन्ध रखने वाले पद

पानी मैला माटी गोरी ।
इस माटी की पुतरी जोरी[1] ॥
मैं नाहीं कछु आहि न मोरा ।
तनु धनु सभु रसु गोविंद तेरा ॥१॥
इस माटी महि पवनु समाइआ[2] ।
झूठा परपंचु जोरि चलाइआ ॥२॥
किनहू लाख पाच की जोरी ।
अंत की वार गगरीआ फोरी[3] ॥३॥
कहि कबीर इक नींव[4] उसारी ।
खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥४॥

इकतु पतरि[5] भरि उरकट कुरकट[6] इकतु पतरि भरि पानी ।
आसि पासि पंच जोगीआ बैठे बीचि नकट दे रानी[7] ॥
नकटी[8] को ठनगनु[9] वाडा डूँ । किनहि बिबेकी काटी तूँ ॥१॥
सगल[10] माहि नकटी का वासा सगल मारि अउहेरी[11] ।

[1]पानी ··जोरी = मैले पानी और उज्वल मिट्टी से इस शरीर की प्रतिमा बनाई गई है। [2]पवनु समाइआ = प्राण प्रतिष्ठा की। [3]गगरिआ फोरी = (उनकी) कपाल-क्रिया मिट्टी के घड़े फोड़ने की भाँति की गई। [4]खुदा हुआ गढ़ा। यह माया का वर्णन है [5]पात्र या पत्तल। [6]उरकट कुरकट = खाने के टुकड़े। [7]आसि··· रानी खाने के लिए पंच जोगी बैठे हैं और बीच में एक नकटी रानी है। तात्पर्य यह है कि केवल एक शरीर है और उसका उपभोग करने के लिए पाँच इन्द्रियाँ हैं और बीच में माया है। [8]माया। [9]नखरा। [10]सर्वत्र। [11]शिकार कर।

सगलिआ[1] की हउ बहिन भानजी जिनहि बरी तिसु चेरी ॥२॥
हमरो भरता[2] बड़ो बिबेकी आपे संतु कहावै ।
ओहु हमारै माथै काइमु[3] अउरु हमरै निकटि न आवै ॥३॥
नाकहु काटी[4] कानहु काटी काटि कूटि कै डारी ।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीन लोक की पिआरी ॥४॥

सरपनी[5] ते ऊपरि नहीं बलीआ[6] ।
जिनि ब्रहमा बिसनु महादेउ छलीआ ॥
मारु मारु स्रपनी निरमल जल[7] पैठी ।
जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी ॥१॥
स्रपनी स्रपनी किआ कहहु भाई ।
जिनि साचु पछानिआ तिनि स्रपनी खाई[8] ॥२॥
स्रपनी ते आन छूछ[9] नहीं अवरा ।
स्रपनी जीती कहा करै जमरा[10] ॥३॥
इह स्रपनी ता की[11] कीती होई ।
बलु अबलु किआ इस ते होई ॥४॥
इह बसती ता बसत सरीरा ।
गुर प्रसादि सहजि तरे कबीरा ॥५॥

जब जरीऐ तब होइ भसम तनु रहै किरम[12] दल खाई ।
काची गागरि नीरु परतु है इआ तन की इहै बडाई ॥

[1]सगलिआ = सब संसार । [2]स्वामी, गुरु । [3]स्थित । [4]नाकहु काटी = (माया) की नाक काट ली । [5]सर्पिणी (माया) [6]बली । [7]निरमल जलि = आत्मा । तिनि स्रपनी खाई उन्होंने सर्पिणी को नष्ट कर दिया है । [8]सारहीन । [9]यम । [10]ब्रह्म की । [11]कृमि ।

काहे भईआ फिरतौ फूलिआ फूलिआ ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिनु कैसे भूलिआ ॥१॥
जिउ मधु माखी तिउ सठोरि[1] रसु जोरि जोरि धनु कीआ ।
मरती बार लेहु लेहु करीऐ भूतु रहन किउ दीआ ॥२॥
देहुरी लउ बरी नारि संग भई आगे सजन सुहेला[2] ।
मरघट लउ सभु लोग कुटंब भइओ आगै हंस[3] अकेला ॥३॥
कहतु कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ ।
झूठी माइआ आपु बधाइआ जिउ नलनी[4] भ्रमि सूआ[5] ॥४॥

हृदै कपटु मुख गिआनी ।
झूठे कहा बिलोवसि[6] पानी ॥
काइआ माजसि कउन गुना ।
जउ घट भीतरि है मलना ॥१॥
लउकी अठसठि तीरथ न्हाई ।
कउरापनु[7] तऊ न जाई ॥२॥
कहि कबीर बीचारी ।
भव सागरु तारि मुरारी ॥३॥

ऐसो इहु संसारु पेखना[8] रहनु न कोऊ पई है रे ।
सूधे सूधे रेगि चलहु तुम नतर कुधका[9] दिवई है रे ॥
बारे बूढ़े तरुने भईआ सभहू जमु लै जई है रे ।
मानसु बपुरा मूसा[10] कीनो मीचु[11] बिलईआ खई है रे ॥१॥

[1]एकत्रित । [2]संभ्रांत । [3]आत्मा । [4]सेमर के वृक्ष की फली जो देखने में अत्यन्त सुंदर अरुण वर्ण की होती है किन्तु उसके भीतर रुई भरी रहती है । [5]शुक । [6]मथ रहा है । [7]कड़वापन । [8]तमाशा । [9]बुरा धक्का । [10]चूहा । [11]मृत्यु ।

धनवता अरु निरधन मनई ताकी कछू न कानी[1] रे।
राजा परजा सम करि मारै ऐसो कालु वखानी रे ॥२॥
हरि के सेवक जो हरि भाए तिन्ह की कथा निरारी[2] रे।
आवहि न जाहि न कबहू मरते पार ब्रहम सगारी[3] रे ॥३॥
पुत्र कलत्र[4] लछिमी माइआ इहै तजहु जीअ जानी रे।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलि है सारगि पानी रे ॥४॥

इनि माइआ जगदीस गुसाई तुमरे चरन विसारे।
किंचत प्रीत न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ॥
ध्रिगु[5] तनु ध्रिगु धनु ध्रिगु इह माइआ ध्रिगु ध्रिगु मति बुधिफनी[6]।
इस माइआ कउ द्रिडु करि राखहु बाधे आप वंचनी ॥१॥
किआ खेती किआ लेवा-देई[7] परपंच झूठु गुमाना।
कहि कबीर ते अंति विगूते[8] आइआ कालु निदाना ॥२॥

सरीर सरोवर भीतरे आछै कमल[9] अनूप।
परम जोति पुरखोतमो जाकै रेख न रूप ॥
रे मन हरि भजु भ्रमु तजहु जग जीवन राम ॥१॥
आवत कछू न दीसई नह दीसै जात।
जहै उपजै विनसै तही जैसे पुरिवन पात ॥२॥
मिथिआ करि माइआ तजी सुख सहज बीचारि।
कहि कबीर सेवा करहु मन मंझि मुरारि ॥३॥

चरन कमल जाकै रिदै[10] बसहि सो जनु किउ डोलै देव।

[1]कानि, मर्यादा। [2]न्यारी, अलग। [3]साथी। [4]स्त्री। [5]धिक्कार। [6]धूर्त। [7]व्यापार। [8]अंति विगूते अंत में कि कर्तव्यविमूढ़ हो जावेंगे। [9]सहस्रदल कमल से तात्पर्य है। [10]हृदय।

मानौ सभ सुख नउनिधि ताकै सहजि सहजि[1] बोलै देव ॥
तब इह मति जउ सभ महि पेखै कुटिल गाँठि जब खोलै देव ।
बारंबार माइआ ते अटकै लै नरजा[2] मनु तोलै देव ॥१॥
जह उह जाइ तही सुखु पावै माइआ तासु न झोलै[3] देव ।
कहि कबीर मेरा मनु मानिआ राम प्रीति की ओलै[4] देव ॥२॥

नरू मेरे नरु काम न आवै ।
पसू मेरे दस काज सवारै ॥
अपने करम की गति मैं किआ जानउ ।
मै किआ जानउ बाबा रे ॥१॥
हाड़ जले जैसे लकरी कर तूला[5] ।
केस जलै जैसे घास का पूला ॥२॥
कहु कबीर तबही नरु जागै ।
जम का डंडु मूंड महि लागै ॥३॥

ना इहु[6] मानसु ना इहु देउ ।
न इहु जती कहावै सेउ[7] ॥
ना इहु जोगी ना अवधूता[8] ।
ना इसु माइ न काहू पूता ॥
इआ मंदर[9] महि कौन बसाई ।
ता का अंतु न कोऊ पाई ॥१॥
ना इहु गिरही न ओदासी ।
ना इहु राज न भीख मंगासी ॥

[1]सरलता से । [2]अप्रसन्नता । [3]झटका देती है । [4]ओट । [5]तुल्य । [6]शरीर में रहने वाली आत्मा । [7]शिव । [8]रामानन्द के अनुयायी जो सांसारिकता से अलग थे । [9]भवन, (शरीर) ।

ना इसु पिडु न रकतू राती[1]।
ना इहु ब्रहमनु ना इहु खाती[2] ॥२॥
ना इहु तपा कहावै सेखु।
ना इहु जीवै न मरता देखु॥
इसु मरते कउ जे कोऊ रोवै।
जो रोवै सोई पति खोवै॥३॥
गुर प्रसादि मै डगरो पाइआ।
जीवन मरनु दोऊ मिटवाइआ॥
कहु कवीर इहु राम की अंसु।
जस कागद पर मिटै न मंसु[3] ॥४॥

खसमु[4] मरै तउ नारि[5] न रोवै।
उसु रखवारा अउरो होवै॥
रखवारे का होइ विनास।
आगै नरकु ईहा भोग विलास॥
एक सुहागिन जगत पिआरी।
सगले जीअ जत की नारी॥१॥
सुहागनि गलि सोहै हारु[6]।
संत कउ बिखु बिगसै संसारु॥
करि सीगारु बहै पखिआरी[7]।
संत की ठिठकी फिरै बिचारी॥२॥
संत भागि ओहि पाछै परै।
गुर परसादी मारहु डरै॥

[1] रकतू राती = लाल रक्त। [2] बढ़ई। [3] स्याही। [4] स्वामी (मनुष्य)। [5] स्त्री (माया)। [6] हारु (सौन्दर्य)। [7] व्याभिचारिणी औरत।

साकत[1] की ओह पिंड पराइणि[2] ।
हम कउ द्रिसटि परै त्रिखि डाइणि ॥३॥
हम तिस का बहु जानिआ भेउ[3] ।
जब हूए क्रिपाल मिले गुरदेउ ॥
कहु कबीर अब बाहरि परी ।
ससारै कै अंचलि लरी[4] ॥४॥

ग्रिहि सोभा जाकै रे नाहि ।
आवत पहीआ[5] खूधे[6] जाहि ॥
वाकै अंतरि नहीं संतोखु ।
बिनु सोहागनि[7] लागै दोखु ॥
धनु सोहागनि महा पवीत ।
तपे तपीसर डोलै चीत ॥१॥
सोहागनि किरपन की पूती ।
सेवक[8] तजि जगत सिउ सूती[9] ॥
साधू कै ठाढ़ी दरबारि ।
सरनि तेरी मोकउ निसतारि ॥२॥
सोहागनि है अति सुंदरी ।
पग नेवर छनक छनहरी[10] ॥
जउ लगु प्रान तऊ लगु संगे ।
ना त्हि चली बेगि उठि नगे ॥३॥
सोहागनि भवन मै लीआ ।
दसअठ पुराण तीरथ रस कीआ[11] ॥

[1]शाक्त । [2]पिंड पराइणि-शरीर रक्षिका । [3]भेद । [4]मोती की लड़ी से तात्पर्य है । [5]पाहुन, अतिथि । [6]क्षुधित, भूखा । [7]माया । [8]भक्त । [9]सोई । [10]मधुर ध्वनि करने वाली । [11]विलास किया है ।

ब्रहमा बिसनु महेसर बेधे ।
बडे भूपति राजे है छेधे ॥४॥
सोहागनि उरवारि न पारि ।
पाँच नारद[1] कै संगि बिधवारि ॥
पाँच नारद के मिखे फूटे ।
कहु कबीर गुर किरपा छूटे ॥५॥

जल महि मीन माइआ के बेधे[2] ।
दीपक पतंग माइआ के छेदे ॥
काम माइआ कुचर[3] कउ बिआपै ।
भुइ अगम भ्रिङ्ग माइआ महि खापे ॥
माइआ ऐसी मोहनी भाई ।
जेते जीअ तेते डहकाई ॥१॥
पखी म्रिग माइआ महि राते ।
साकर[4] माखी अधिक संतापे ॥
तुरे[5] उसट[6] माइआ महि भेला ।
सिध चउरासीह माइआ महि खेला ॥२॥
छिअ[7] जती माइआ के बंदा ।
नवै नाथ सूरज अरु चंदा ॥
तपे रखीसर माइआ महि सूता ।
माइआ महि कालु अरु पच दूता ॥३॥
सुआन[8] सिआल[9] माइआ महि राता ।
बंतर[10] चीते अरु सिघाता ।

[1]संयम । [2]आबद्ध । [3]कुंजर, हाथी । [4]शक्कर । [5]घोड़े । [6]ऊँट ।
[7]...: । [8]कुत्ता । [9]सियार । [10]बन्दर ।

माजार गाडर[1] अरु लूबरा[2] ।
बिरख मूल माइआ महि परा ॥४॥
माइआ अंतरि भीने देव ।
सागर इन्द्रा अरु धरतेव ॥
कहि कबीर जिसु उदरु तिसु माइआ ।
तब छूटे जब साधू पाइआ ॥५॥

[1] भेड़ । [2] लोमड़ी ।

रहस्यवाद से सम्बन्ध रखने वाले पद

बिनु सत सती होइ कैसे नारि ।
पंडित देखहु रिदै[१] बीचारि ॥
प्रीति बिना कैसे बधै सनेहु ।
जब लग रसु[२] तब लग नहीं नेहु ॥१॥
साहनि[३] सतु करै जीअ अपनै[४] ।
सो रमये[५] कउ मिलै न सपनै ॥२॥
तनु मनु धनु ग्रिहु सउपि सरीरु ।
सोई सुहागनि कहै कबीरु ॥३॥

ओइ जु दीसहि अंबरि[६] तारे ।
किनि ओइ चीते[७] चीतन हारे[८] ॥
कहु रे पंडित अंबरु का सिउ लागा[९] ।
बूझै बूझनहारु[१०] सभागा ॥१॥
सूरज चंदु करहि उजीआरा ।
सभ महि पसरिआ ब्रहम पसारा ॥
कहु कबीर जानैगा सोइ ।
हिरदै रामु मुखि रामै होइ ॥३॥

पेवकड़ै[११] दिन चारि है साहुरड़ै[१२] जाणा ।
अंधा लोकु न जाणई मूरखु एआणा[१३] ॥

[१]हृदय । [२]स्वार्थ । [३]स्वामी । [४]अपने स्वार्थ वश । [५]रमण करने वाला साधक । [६]आकाश । [७]चित्रित किया । [८]चित्रकार । [९]किस चीज़ पर स्थिर है । [१०]जिज्ञासु । [११]नैहर । [१२]स्वामी के समीप । [१३]अज्ञानी ।

कहु डडीआ[1] बाधै धन खड़ी[2] ।
पाहू[3] घरि आये मुकलाऊ आए ॥१॥
ओह जि दिसै खूहड़ी[4] कउन लाजु[5] वहारी[6] ।
लाजु[7] घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी[8] ॥२॥
साहिबु होइ दइआल क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे ।
ता सोहागणि जाणीऐ गुर सबदु बीचारे ॥३॥
किरत[9] की बाधी सभ फिरै देखहु बीचारी ।
एस नो किआ आखीऐ[10] किआ करे विचारी ॥४॥
भई निरासी उठि चली चित बधि न धीरा ।
हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥५॥

पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा ।
उर न भीजै[11] पगु न खिसै हरि दरसन की आसा ॥
उडहु न कागा कारे ।
बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे ॥१॥
कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै ।
एकु आधारु नाम नाराइन रसना रामु रवीजै ॥२॥

[1]डंडी, डोली । [2]कहु. खडी प्रेयसी अपना साज सामान बाँध कर खड़ी है । [3]पाहुन । [4]मुक्त या विदा कराने । [5]छोटा कुआँ या सरोवरी । [6]लेज, रस्सी । [7]सहायता ओह...वहारी तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है । [8]आत्मा । [9]किरत कर्म । [10]बोलना । [11]उर न भीजै अधिक आंसुओं से उसका हृदय नहीं दीखता (इस भय से कि अधिक अश्रु से नेत्र ज्योति के धूमिल पड़ जाने से हरि के दर्शन स्पष्ट न हो सकेंगे) ।

तनु रैनी[1] मनु पुनरपि करिहउ पाचउ तत बराती[2] ।
राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रग राती ॥
गाउ गाउ री दुलहिनी मंगल चारा ।
मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा ॥१॥
नाभि कमल महि वेदी रचिले ब्रहम गिआन उचारा ।
राम राइ सो दूलहु पाइओ अस वड भाग हमारा ॥२॥
सुरि नर मुनि जन कउतक आए कोटि तेतीसउ जाना ।
कहि कबीर मोहि विआहि चले हैं पुरख एक भगवाना ॥३॥

कीउ सिंगारु मिलन के ताई ।
हरि न मिले जग जीवन गुसाई ॥
हरि मेरो पिरु हउ हरि की बहुरीआ[3] ।
राम बडे मै तनक लहुरीआ ॥१॥
धन पिर[4] एकै संगि बसेरा ।
सेज एक पै मिलनु दुहेरा[5] ॥२॥
धनि सुहागनि जो पीअ भावै ।
कहि कबीर फिरि जनमि न आवै ॥३॥

रहु रहु री बहुरीआ घूंघटु जिनि काढै ।
अंत की बार लहैगी न आढै ।
घूंघटु काढि गई तेरी आगै[6] ।
उनकी गैलि[7] तोहि जिनि लागै ॥१॥

[1]सुगंधित रेणु से सज्जित । [2]पाचउ तत बराती पाँचों तत्वों को बराती बनाऊँगी । [3]प्रेयसी । [4]धन फिर स्त्री और स्वामी । (आत्मा और परमात्मा) [5]दुःसाध्य । [6]हृदय की आग । [7]उनकी गैलि-मुंडे हुए सन्यासियों का मार्ग ।

घूंघट काढै की इहै वडाई ।
दिन दस पाच वहू भले आई ॥२॥
घूघटु तेरो तउ परि साचै ।
हरि गुन गाइ कूदहि अरु नाचै ॥३॥
कहत कबीर बहू तब जीतै ।
हरि गुन गावत जनम विहीतै ॥४॥

दुइ दुइ लोचन पेखा ।
हउ हरि बिनु अउरु न देखा ॥
नैन रहे रंगु लाई ।
अब वेगल[1] कहनु न जाई ॥
हमरा भरमु गइआ भउ भागा ।
जब राम नाम चितु लागा ॥१॥
वाजीगर[2] डंक वजाई ।
सभ खलक[3] तमासे आई ॥
वाजीगर स्वांगु सकेला[4] ।
अपने रग रवै अकेला ॥२॥
कथनी कहि भरमु न जाई ।
सभ कथि कथि रही लुकाई ॥
जाकउ गुरमुखि आपि बुझाई ।
ताके हिरदै रहिआ समाई ॥३॥
गुर किंचत किरपा कीनी ।
सभु तनु मनु देह हरि लीनी ॥
कहि कबीर रगि राता ।
मिलिओ जग जीवन दाता ॥४॥

किआ पड़ीऐ[1] किआ गुनीऐ ।
किआ बेद पुराना सुनीऐ ॥
पड़े सुने किआ होई ।
जउ सहज न मिलिओ सोई ॥
हरि का नामु जपसि गवारा ।
किआ सोचहि बारंबारा ॥१॥
अंधिआरे दीपकु चहीऐ ।
इक बसतु अगोचर लहीऐ[2] ॥
बसतु अगोचर पाई ।
घटि दीपकु रहीआ समाई ॥२॥
कहि कबीर अब जानिआ ।
जब जानिआ तउ मनु मानिआ ॥
मन माने लोगु न पतीजै ।
न पतीजै तउ किआ कीजै ॥३॥

जो जनु भाउ भगति कछु जानै ताकउ अचरजु काहो[3] ।
जिउ जलु जल महि पैसि न निकसै तिउ ढुरि मिलिओ जुलाहो[4] ॥
हरि के लोगा मै तउ मति का भोरा ।
जउ जनु कासी तजहि कबीरा रमईऐ कहा निहोरा ॥१॥
कहत कबीर सुनहि रे लोई[5] भरमि न भूलहु कोई ।
किआ कासी किआ ऊखरु मगहरु राम रिदै जउ होई ॥२॥

[1]पढ़ा जावे। [2]बसतु ..लहीऐ इन्द्रियों से ग्रहण न की जाने वाली वस्तु की प्राप्ति हो। [3]अचरजु काहो (मृत्यु का) आश्चर्य कैसा ! [4]तिउ ...जुलाहो उसी प्रकार यह जुलाहा (कबीर) भी उस ब्रह्म में ढुलक कर एक रूप होकर मिल गया है। [5]लोगों।

थरहर कंपै बाला जीउ[1]।
ना जानउ किआ करसी पीउ ॥
रैनि[2] गई मत दिनु[3] भी जाइ।
भवर[4] गए बग[5] बैठे आइ ॥१॥
काचै करवै[6] रहै न पानी।
हंसु चलिआ काइआ कुमलानी ॥२॥
कुआर कंनिआ जैसे करत सींगारा।
किउ रलीआ[7] मानै बाझु[8] भतारा ॥३॥
काग उडावत[9] भुजा पिरानी।
कहि कबीर इह कथा सिरानी[10] ॥४॥

[1]बाला जीउ नन्हा सा जीवात्मा। [2]यौवन। [3]वृद्धावस्था। [4]काले बाल। [5]श्वेत केश-कलाप। [6]काचे करवै- शरीर [7]रलीआ रमण किया। [8]आबद्ध। [9]काग उडावत अभिलाषाओं को हुए। [10]इह कथा सिरानी जीवन की कथा समाप्त हो जाती है।

हठयोग से सम्बन्ध रखने वाले पद

अचरज एकु सुनहु रे पंडीआ[1]
अब किछु कहनि न जाई।
सुरि नर गण गध्रब जिनि मोहे
त्रिभवण मेखुली[2] लाई॥
राजा राम अनहद किंगुरी[3] बाजै
जाकी दिसटि नाद लिव लागै[4] ॥१॥
भाठी गगनु सिंङिआ[5] अरु चुङिआ[6]
कनक कलस इकु पाइआ।
तिसु महिधार चुऐ अति निरमल
रस महि रसन चुआइआ ॥२॥
एक जु बात अनूप बनी है
पवन पिआला साजिआ।
तीनि भवन महि एको जोगी
कहहु कवनु है राजा ॥३॥
ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम
कहु कबीर रंगि राता।
अउर दुनी सभ भरमि भुलानी
मनु राम रसाइन राता ॥४॥

अवर मूए किआ सोगु करीजै।
तउ कीजै जउ आपन जीजै॥

[1]पण्डित। [2]शृङ्खला। [3]जोगियों का सारंगी की भाँति एक बाजा। [4]लिव लागै = लीन हो जाती है। [5]सिंगा (इड़ा नाड़ी)। [6]सुषुम्ना (पिंगला नाड़ी)।

मैं न मरउ मरिबो संसारा ।
अब मोहि मिलिओ है जीआवन हारा ॥१॥
इआ देही परमल महकदा ।
ता मुख बिसरे परमानंदा ॥२॥
कूअटा[1] एक पंच पनिहारी ।
टूटी लाजु भरै मति हारी ॥३॥
कहु कबीर इक बुधि बीचारी ।
न ओहु कुअटा ना पनिहारी[2] ॥४॥

गगनि रसाल चुऐ[3] मेरी माठी ।
संचि महा रसु-तनु मइआ काठी ॥
उआ कउ कहीऐ सहज मतवारा ।
पीवत राम रसु गिआन बीचारा ॥१॥
सहज कलालनि[4] जउ मिलि आई ।
आनदि माते अनदिनु जाई ॥२॥
चीनत चीतु निरंजन लाइआ ।
कहु कबीर तौ अनभउ पाइआ ॥३॥

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुनि समाइआ[5] ।
अंजन[6] माहि निरंजन रहीऐ बहुड़ि न भव जलि पाइआ ॥

[1]कुआँ (शरीर) । कूअटा ··पनिहारी यह शरीर कूप की तरह है और शरीर की पंच इन्द्रियाँ उससे रस लेती हैं । इन इन्द्रियों के साधनों के नष्ट हो जाने पर भी ये रस लेने पर प्रयत्नशील रहती हैं । [2]न ओहु··· पनिहारी शरीर मिथ्या है । [3](ब्रह्मानंद रूपी रस) चू रहा है । [4]मदिरा पिलाने वाली । [5]सुनि समाइआ शून्य में समाया हुआ । [6]माया ।

मेरे राम ऐसा खीरु[1] बिलोईऐ ॥
गुरमति मनूआ असथिरु राखहु इनि बिधि अम्रितु पीओईऐ ॥१॥
गुर कै बाणि बजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा ।
सकति अधेर जेवड़ी भ्रमु चूका निहचलु सिव घरि बासा ॥२॥
तिनि बिनु बाणै धनखु चढाईऐ इहु जगु बेधिआ भाई ।
दह दिस बूड़ी पवनु[2] झुलावै डोरि[3] रही लिव लाई ॥३॥
उनमनि[4] मनूआ सुनि समाना दुबिधा दुरमति भागी ।
कहु कबीर अनभउ इकु देखिआ राम नाम लिव लागी ॥४॥

उलटत पवन[5] चक्र खटु भेदे[6] सुरति[7] सुन[8] अनरागी[9] ।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी ॥
मेरे मन मन ही उलटि समाना ।
गुर परसादि अकलि भई अवरै न तरु था बेगाना ॥१॥
निवरै[10] दूरि दूरि फुनि निवरै जिनि जैसा करि मानिआ ।
अलउती[11] का जैसे भइआ बरेडा[12] जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥२॥
तेरी निरगुन कथा काइ सिउ कहिऐ ऐसा कोइ बिबेकी ।
कहु कबीर जिनि दीआ पलीता[13] तिनि तैसी झल देखी ॥३॥

पाप पुंनु दुइ बैल बिसाहे[14] पवनु[15] पूजी परगासिओ ।

[1]क्षीर, दूध । [2]प्राणायाम । [3]सूत्र । [4]योग की एक मुद्रा जिसमें मन की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी और स्थिर हो जाती है । [5]उलटत पवन प्राणायाम कर । [6]चक्र खटु भेदे छः चक्रों को (कुंडलिनी के द्वारा) वेध कर । [7]आत्मा । [8]ब्रह्मरंध्र । [9]अनुराग कर । [10]निकट । [11]ओरी । [12]छानी । अलउती...बरेडा उनकी बाह्य इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं । [13]वह बत्ती जिससे तोप के रंजक में आग लगाई जाती है । [14]खरीदे । [15]पवनु साँस ।

त्रिसना गूणि[1] भरी घट भीतरि इन बिधि टाड[2] बिसाहिओ ॥
ऐसा नाइकु[3] रामु हमारा ।
सगल संसारु किओ बनजारा ॥१॥
कामु क्रोधु दुइ भए जगाती[4] मन तरंग[5] बटवारा[6] ।
पंच ततु मिलि दानु निबेरहि टाडा उतरिओ पारा ॥२॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनि आई ।
घाटी चढ़त बैलु इकु[7] थाका चलो गोनि छिटकाई ॥३॥

जह कछु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही ।
इड़ा पिंगला सुखमन बंदे ए अवगन[8] कत जाही ॥
तागा[9] तूटा गगनु[10] बिनसि गइआ तेरा बोलतु[11] कहा समाई ।
एह संसा[12] मो कउ अनदिनु बिआपै मो कउ को न कहै समझाई ॥१॥
जह बरभंडु पिंडु तह नाही रचनहारु तह नाही ।
जोड़णहारो सदा अतीता[13] इह कहीऐ किसु माही ॥२॥
जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी ।
का को ठाकुरु का को सेवकु को काहू कै जासी ॥३॥
कहु कबीर लिव लागि रही है जहा बसे दिन राती ।
उआ का मरमु ओही पर जाने ओहु तउ सदा अबिनासी ॥४॥

सुरति[14] सिम्रित[15] दुइ कंनी[16] मुंदा[17] परमिति[18] बाहरि खिंथा[19] ।

[1]गोनि । [2]बनजारे का सामान । [3]व्यापार करने वाला । [4]कर वसूल करने वाले । [5]भावनाएं । [6]डाकू । [7]बैलु इकु पाप । [8]आवागमन । [9]साँस । [10]ब्रह्मरंध्र । [11]बोलने की शक्ति । [12]संदेह । [13]जोड़णहारो सदा अतीता सृष्टि को जोड़ने वाला तो सदा अतीत है । [14]श्रुति । [15]स्मृति । [16]कर्णा, कान के आभूषण । [17]मुद्रा, कानों में पहनने का स्फटिक कुंडल । [18]क्षितिज । [19]पहनने का वस्त्र ।

सुंन गुफा[1] महि आसणु बैसणु कलप बिबरजित[2] पंथा ॥
मेरे राजन मैं बैरागी जोगी ।
मरत न सोग बिओगी ॥१॥
खंड ब्रहमंड महि सिंङी[3] मेरा बटूआ सभु जगु भसमाधारी ।
ताड़ी[4] लागी त्रिपलु[5] पलटीऐ[6] छूटै होइ पसारी[7] ॥२॥
मनु पवनु दुइ तूंबा करी है जुग जुग सारद साजी ।
थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ॥३॥
सुनि मन मगन भये है पूरे माइआ डोलन लागी[8] ।
कहु कबीर ताकउ जनमु नही खेलि गइओ बैरागी ॥४॥

गज नव गज दस गज इकीस पुरीआ एक तनाई[9] ।
साठ सूत नव खंड बहतरि पाटु[10] लगो अधिकाई ॥
गई बुनावंन माहो[11] ।
घर छोडिऐ जाइ जुलाहो ॥१॥
गजी[12] न मिनीऐ[13] तोलि न तुलीऐ पाचनु सेर अढाई ।
जौ करि पाचनु बेगि न पावै झगरू करै घर हाई[14] ॥२॥
दिन की बैठ[15] खसम की बरकस[16] इह बेला कत आई ।
छूटे कूंडे भीगै पूरीआ चलिओ जुलाहो रीसाई ॥३॥

[1]सुंन गुफा ब्रह्मरन्ध्र । [2]कलप बिबरजित=कर्मकांड से रहित । [3]सींग की तुरही । [4]त्राटक । [5]भूत, वर्तमान और भविष्य । [6]परिवर्तित करने में । [7]होइ पसारी सर्वव्यापी होता हूँ । [8]डोलन लागी चंचल हो गई । [9]गज...तनाई=नौ गज दस गज और इक्कीस गज की एक पुरिआ तानी गई । [10]वस्त्र । [11]माँ । [12]मोटा कपड़ा । [13]लिपटती है । [14]घर नष्ट करने वाली, झगड़ालू स्त्री । [15]बाज़ार । [16]बरकत, लाभ ।

छोछी नली[1] ततु नही निकसै न तर रही उरझाई ।
छोडि़ पसारु ईहा रहु बपुरी कहु कबीर समझाई ॥४॥

सनक संनद अंतु नहीं पाइआ ।
बेद पड़े पड़ि ब्रहमे जनमु गवाइआ ॥
हरि का बिलोवना[2] बिलोवहु मेरे भाई ।
सहजि बिलोवहु जैसे ततु[3] न जाई ॥१॥
तनु करि मटुकी मन माहि बिलोई ।[4]
इसु मटुकी महि सबदु सजोई ॥२॥
हरि का बिलोवना मन का बीचारा ।
गुर प्रसादि पावै अंम्रित धारा ॥३॥
कहु कबीर नदरि करे जे मीरा ।
राम नाम लगि उतरे तीरा ॥४॥

काहू दीन्हे पाट पटंबर काहू पलघ[5] निवारा ।
काहू गरी गोदरी[6] नाही काहू खान परारा[7] ॥
अहिरख[8] वादु न कीजै रे मन ।
सुक्रितु[9] करि करि लीजै रे मन ॥१॥
कुम्हारै एक जु माटी गूंधी बहु बिधि बानी लाई ।
काहू महि मोती मुकताहल काहू बिआधि लगाई ॥२॥
सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु[10] कहै धनु मेरा ।
जम कर डंडु मूंड महि लागै खिन महि करै निबेरा ॥३॥
हरि जनु ऊतमु भगतु सदावै आगिआ मनि सुखु पाई ।
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा[11] मनि बसाई ॥४॥

[1] ढरकी । [2] मंथन करना, खोज करना । [3] तत्व । [4] मंथन । [5] पलँग ।
[6] प्याज । [7] करैला । [8] भोजन । [9] सत्कर्म । [10] मूर्ख । [11] शरीर ।

कहै कबीर सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी।
चिरगट[1] फारि चटारा[2] लै गइओ तरी[3] तागरी[4] छूटी ॥५॥

काइआ कलालनि[5] लाहनि[6] मेलउ गुर का सबदु गुड़ु कीनु रे।
त्रिसना कामु क्रोधु मद मतसर काटि काटि कसु[7] दीनु रे॥
कोई है रे संतु सहज सुख अंतरि जाकउ जपुतपु देउ दलाली रे।
एक बूंदि भरि तनुमनु देवउ जो मदु देइ कलाली रे ॥१॥
भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रहम अगनि तनि जारी रे।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचन हारी[8] रे ॥२॥
तीरथ बरथ नेम सुचि सजम रवि ससि[9] गहनै देउ रे।
सुरति पिआल सुधा रसु अंम्रितु एहु महा रसु पेउ रे ॥३॥
निझर धार चुऐ अति निरमल इह रस मनूआ रातो रे।
कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे ॥४॥

बंधचि बधनु पाइआ[10]। मुकते[11] गुरि[12] अनलु बुझाइआ॥
जब नख सिख इहु मन चीन्हा। तब अंतरि मजनु[13] कीन्हा॥
पवन पति उनमनि रहनु खरा। नहीं मिरतु[14] न जनमु जरा ॥१॥
उलटीले[15] सकति सहार[16]। पैसीले गगन मझारं॥
बेधीअले चक्र भुअंगा[17]। भेटीअले राइ निसंगा[18] ॥२॥

[1] चीथड़ा। [2] चमकीला (रत्न)। [3] कपड़ों की पेटी। [4] जंजीर। [5] मद्य बेचने वाली। [6] ग्राम। [7] खिंचा हुआ अर्क। [8] निचोड़ने वाली। [9] रवि ससि शरीर के अन्दर स्थित सूर्य चन्द्र से तात्पर्य है। [10] बंधनि बधनु पाइआ बंधन में पड़ते पड़ते ही। [11] मुक्ति। [12] गुरु। [13] स्नान। [14] मृत्यु। [15] उलट लिया, अन्तर्मुखी कर लिया। [16] सहारे। [17] कुंडलिनी। [18] अकेले।

चूकीअले[1] मोह मइआसा । ससि कीनो सूर गिरासा[2] ॥
जब कुंभकु[3] भरि पुरि लीणा । तह बाजे अनहद बीणा ॥३॥
बकतै बकि सबदु सुनाइआ । सुनतै सुनि मनि बसाइआ ॥
करि करता उतरसि पारं । कहै कबीरा सारं ॥४॥

देही गावा[4] जीउ धर महतउ[5] बसहि पंच किरसाना[6] ।
नैनू[7] नकटू[8] स्रवनू[9] रसपति[10] इंद्री[11] कहिआ न माना ॥
बाबा अब न बसउ इह गाउ ।
घरी घरी का लेखा मागै काइथु[12] चेतू[13] नाउ ॥१॥
धरम राइ जब लेखा मागै बाकी निकसी भारी ।
पंच किसानवा भागि गए लै बाधिओ जीउ दरबारी ॥२॥
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेत ही करहु निबेरा[14] ।
अब की बार बखसि बंदे कउ बहुरि न भउजलि फेरा ॥३॥

सिव की पुरी[15] बसै बुधि सारु[16] ।
तह तुम्ह मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईत ऊत[17] की सोझी परै ।
कउन करम मेरा करि करि मरै ॥
निज पद ऊपरि लागो धिआनु ।
राजा राम नामु मोरा ब्रहम गिआनु ॥१॥

[1]रहित हो गया । [2]ससि ... गिरासा (सहस्त्र दल स्थित) चन्द्र ने (मूलाधार स्थित) सूर्य का ग्रासकर लिया । [3]कुंभक साँस रोकना । [4]ग्राम । [5]महतो, मुखिया । [6]किसान । [7]नेत्र । [8]नाक । [9]कान । [10]जिह्वा । [11]स्पर्श । [12]पटवारी । [13]चैतन्य मन । [14]अदायगी । [15]सिव की पुरी बनारस । [16]बुधि सारु गुरु । [17]ईत-ऊत बुरे और निकलो ।

मूल दुआरै[1] बंधिआ[2] बंधु[3] ।
रवि ऊपर गहि राखिआ चंदु ॥
पछम दुआरै[4] सूरज तपै ।
मेर डंड सिर ऊपरि बसै ॥२॥
पसचम दुआरे की सिल ओड़[5] ।
तिह सिल ऊपरि खिड़की[6] अउर ॥
खिड़की ऊपरि दसवा दुआरु ।
कहि कबीर ता कर अंतु न पारु ॥३॥

[1]मूल दुआरै मूलाधार चक्र । [2]बांध लिया । [3]बंधन । [4]पछम
दुआरै इड़ा नाड़ी । [5]ओट, आज्ञा चक्र । (पश्चिम द्वार) [6]ब्रह्म रंध्र ।

रूपक से सम्बन्ध रखने वाले पद

ऐसो अचरजु देखिओ कबीर ।
दधि कै[१] भोलै बिरोलै नीरु[२] ॥
हरी अंगूरी[३] गदहा[४] चरै ।
नित उठि हासै हीगै[५] मरै ॥१॥
माता भैसा[६] अमुहा[७] जाइ ।
कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥२॥
कहु कबीर परगटु भई खेड[८] ।
लेले[९] कउ चूघै[१०] नित भेड[११] ॥३॥
राम रतन मति परगटी आई ।
कहु कबीर गुरि सोझी पाई ॥४॥

देइ मुहार[१२] लगामु पहिरावउ ।
सगल त[१३] जीनु गगन दउरावउ[१४] ॥
अपनै बीचारि असवारी कीजै ।
सहज कै पावड़ै[१५] पगु धरि लीजै ॥१॥
चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारउ ।
हिच[१६] हित प्रेम कै चाबुक मारउ ॥२॥

[१]ब्रह्म । [२]पानी, माया । [३]हरी अंगूरी=ब्रह्म ज्ञान । [४]कपटी गुरु या कपटी मन । [५]हीगै=प्रसन्न होकर रेंकना । [६]माया । [७]मुख रहित बछड़ा, अज्ञान । [८]खेल । [९]वासना । [१०]बकरी का बच्चा । धार्मिक पुस्तकें । [११]स्तन पान करती है । [१२]मुहार देइ=बाँध कर । [१३]सृष्टि । [१४]देइ ······ दउरावउ=मन को संयम से बाँधो । [१५]रकाब । [१६]खींच ।

रूपक से सम्बन्ध रखने वाले पद

कहत कबीर भले असवारा।
बेद कतेब ते रहहि निरारा[1] ॥३॥

देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी[2]।
सभै उडानी भ्रम की टाटी[3] रहै न माइआ बाधी ॥
दुचिते[4] की दुइ थूनि[5] गिरानी मोहु बलेंडा[6] टूटा।
तिसना छानि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ॥१॥
आंधी पाछे जो जलु बरखै तिहि तेरा जनु भीना।
कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उदै भानु जब चीना ॥२॥

जिउ कपि के कर मुसटि[7] चनन[8] की लुबधि न तिआगु दइओ।
जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिओ[9] ॥
भगति बिनु बिरथे जनमु गइओ।
साध संगति भगवान भजन बिनु कही न सचु रहिओ ॥१॥
जिउ उदिआन[10] कुसम परफुलित किनहिन घ्राउ लइओ[11]।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हइओ ॥२॥
इआ धन जोबन अरु सुत दारा पेखन कउ जु दइओ।
तिन ही माहि अटकि जो उरझे इंद्री प्रेरि लइओ ॥३॥
अउध[12] अनल तनु तिनको मंदरु[13] चहु दिस ठाटु[14] ठइओ।
कहि कबीर मै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लइओ ॥४॥

[1] अलग। [2] ज्ञान। [3] भ्रम। [4] द्विविधा। [5] बोझ रोकने वाली संभिया। [6] मोह। [7] मुट्ठी। [8] चना। [9] गरहि परिओ बन्धन में पड़ता है। [10] उद्यान। [11] सुगन्धि लेता है। [12] जीवन की अवधि। [13] महल। [14] श्रृंगार।

झीलु र बाबी[1] बलदु पखावज[2] कउआ ताल बजावै[3] ।
पहिरि चोलना गदहा नाचै[4] भैसा भगति करावै[5] ॥
राजा राम ककरीआ बरे[6] पकाए । किनै बूझनहार खाए ॥१॥
बैठि सिंघु घरि पान लगावै[7] घीस गलउरे लिआवै[8] ।
घरि घरि मुसरी मगलु गावहि[9] कछूआ सखु बजावै[10] ॥२॥
बस को पूत[11] बीआहन चलिआ सुइने मडप[12] छाए ।
रूप कनिआ सुंदरि[13] वेधी ससै सिंघ गुन गाए[14] ॥३॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु कीरी[15] परबतु[16] खाइआ ।
कछूआ[17] कहै अगार[18] भि लोरउ लूकी[19] सबदु[20] सुनाइआ ४॥

[1]रबाब बजाने वाला=हाथी। [2]पखावज बजाने वाला=बैल। [3]ताल बजाने वाला=कौवां। [4]नाचनेवाला=गधा। [5]भक्ति (अधिकार) करनेवाला=भैंसा। [6]ककड़ी के बड़े=राजाराम। [7]पान लगाने वाला=सिंह। [8]गिलौरिया लाने वाली=घूँस। [9]मंगल गाने वाली=मूषकी। [10]शंख बजाने वाला=कछुआ। [11]उच्चवंशी= जीवात्मा। [12]स्वर्ण मण्डप=शरीर। [13]सुन्दरी कन्या=माया। [14]गुण गाने वाले=शशक और सिंह। [15]बराती=कीटी। [16]मिष्ठान्न= पर्वत्। [17]मोटा पडित=कछुआ। [18]विवाह के अवसर को अग्नि। [19]गाली गाने वालियाँ। [20]विवाह के अवसर के मगल गान।

टिप्पणी यह आध्यात्मिक विवाह का रूपक है। हाथी, बैल, गधा और भैंसा=ये कर्मेंद्रियों के रूप में हैं और सिंह, घूस, चूहा, कछुआ और शशक ये ज्ञानेंद्रियों के रूप में हैं। "कीड़े ने पर्वत को खा लिया" का तात्पर्य है देह ने, आत्मा को निगल लिया। अगार भी चचल हो गया" का तात्पर्य है आध्यात्मिक अनुराग ससार के विषयों की ओर आकृष्ट हो गया। "उल्लूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है," का तात्पर्य है अराता धार्मिक स्वांग भर रही है। "ककड़ी के बड़े" का तात्पर्य है सच्चा ज्ञान।

कहा सुआन[1] कउ सिम्रिति सुनाए ।
कहा साकत[2] पहि हरि गुन गाए ॥
राम राम राम रमे रमि रहीऐ ।
साकत सिउ भूलि नहीं कहीऐ ॥१॥
कऊआ कहा कपूर चराए ।
कह बिसीअर[3] कउ दूधु पीआए ॥२॥
सति संगति मिलि बिबेक बुधि होई ।
पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥३॥
साकतु सुआनु सभु करे कराइआ ।
जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥४॥
अम्रितु लैलै नीमु सिंचाई ।
कहत कबीर उआ को सहजु[4] न जाई ॥५॥

पहिला पूतु[5] पिछै री माई[6] ।
गुरु[7] लागो चेला[8] की पाई ॥
एकु अचभउ सुनहु तुम भाई ।
देखत सिंघु[9] चरावत गाई[10] ॥१॥
जल की मछुली[11] तरवरि[12] बिआई ।
देखत कुतरा[13] लै गई बिलाई[14] ॥२॥
तलै रे बैसा ऊपरि सूला ।
तिस कै पेड़ि[15] लगे फल फूला[16] ॥३॥

[1]कुत्ता, असत । [2]शक्ति । [3]सर्प । [4]स्वभाव । [5]जीव । [6]माया । [7]शब्द । [8]जीवात्मा । [9]सिंह = ज्ञान । [10]वाणी । [11]मछुली = कुण्डलिनी । [12]तरुवर = मेरुदण्ड । [13]कुत्ता = अज्ञानी । [14]बिल्ली = माया । [15]पेड़ि = सुषुम्णा नाड़ी । [16]चक्र और सहस्र दल कमल ।

घोरै[1] चरि भैंस[2] चरावन जाई ।
बा हरि बैलु[3] गोनि[4] घरि आई ॥४॥
कहत कबीर जु इस पद बूझै ।
राम रमत तिसु सभु किछु सूझै ॥५॥

सासु[5] की दुखी ससुर[6] की पिआरी जेठ[7] के नामि डरउ रे ।
सखी सहेली[8] ननद[9] गहेली[10] देवर[11] कै बिरहि जरउ रे ॥
मेरी मति बउरी मै रामु बिसारिओ ।
किन बिधि रहनि रहउ रे ॥
सेजै रमतु[12] नैन नहीं पेखउ इहु दुखु का सउ कहउ रे ॥१॥
बापु[13] सावका[14] करै लराई माइआ[15] सद मतवारी ।
बड़े भाई[16] कै जब संगि होती तब हउ नाह[17] पिआरी ॥२॥
कहत कबीर पच को झगरा झगरत जनमु गवाइआ ।
झूठी माइआ सभु जगु बाधिआ मै राम रमत सुखु पाइआ ॥३॥

हम घरि सूतु तनहि नित ताना[18] कंठि[19] जनेऊ तुम्हारे ।
तुम्ह तउ वेद पड़हु गाइत्री गोविंदु रिदै हमारे ॥
मेरी जिहवा बिसनु[20] नैन नाराइन हिरदै बसहि गोबिंदा ।
जम दुआर जब पूछसि[21] बवरे तब किआ कहसि मुकंदा ॥१॥

[1]घोड़ा=मन । [2]तामसी वृत्तियां । [3]पञ्च-प्राण । [4]स्वरूप की सिद्धि । [5]माया । [6]माया पर अधिकार कर लेने वाले गुरु । [7]असाधु । [8]कर्मेन्द्रिय । [9]ज्ञानेन्द्रिय । [10]पकड़ रखा है । [11]साधु पुरुष से । [12]हृदय में ईश्वर सर्वदा वर्तमान रहा । [13]अहंकार । [14]सदैव । [15]प्रकृति । [16]"सहज" [17]नाथ, ईश्वर । [18]सूतु तनहिनित ताना= कपड़ा बुनते हैं । [19]गले में । [20]विष्णु । [21]जम दुआर जब पूछसि=जब तू वृद्ध हो गया ।

हम गोरू तुम गुआर[1] गुसाई जनम जनम रखवारे ।
कबहूं न पार उतारि चराइहु कैसे खसम हमारे ॥२॥
तू बाम्हनु मै कासी क जुलाहा बूझहु मोर गिआना ।
तुम्ह तउ जाचे भूपति राजे हरि सउ मोर धिआना ॥३॥

थाके नैन[2] स्रवन सुनि थाके थाकी सुंदरि काइआ ।
जरा हाक[3] दी सभ मति थाकी एक न थाकसि माइआ ॥
बावेर तै गिआन बीचारु न पाइआ ।
बिरथा जनमु गवाइआ ॥१॥
तब लगु प्रानी तिसे[4] सरेवहु[5] जब लगु घट[6] महि सासा ।
जे घटु जाइ त भाउ[7] न जासी हरि के चरन निवासा ॥२॥
जिस कउ सबदु[8] बसावै अंतरि चूकै तिसहि पिआसा[9] ।
हुकमै बूझै चउपड़ि[10] खेलै मनु जिणि[11] ढाले पासा ॥३॥
जो जन जानि भजहि अबिगत कउ तिनकर कछू न नासा ।
कहु कबीर ते जन कबहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥४॥

एकु कोटि[12] पंच सिकदारा[13] पंचे मागहि हाला[14] ।
जिमी नाही मैं किसी की बोई ऐसा देनु दुखाला[15] ॥

[1]ग्वाले (ईश्वर)। [2]थाके नैन=(थेकते थेकतो) नेत्र थक गए। [3]हुंकार। [4]तृष्णा करता है। [5]सरोवर (सुख के)। [6]शरीर। [7]भाव, भक्ति। [8]शब्द [9]चूकै" पिआसा=सांसारिक वासनाओं के प्रति प्यास जाती रहती है। [10]जीवन का चौपड़। [11]लगाकर जोड़कर। [12]दुर्ग (शरीर)। [13]विश्वसनीय और बलवान रक्षक। [14]मागहि हाला=कैफियत तलब करते हैं। [15]ऐसा देनु दुखाला=कैफियत देना कष्ट कर प्रतीत होता है। किसान=जीवात्मा। रक्षक=पञ्च प्राण। कैफियत पूछना=कष्ट देना। भूमि जोतना बोना=स्वार्थ और परमार्थ के कर्मफल

हरि के लोगा मोकउ नीति[1] डसै पटवारी[2] ।
ऊपरि भुजा करि मै गुर पहि पुकारिआ तिनि हउ लीआ उबारी ॥१॥
नउ डाडी[3] दस मुंसफ[4] धावहि रईअति[5] बसन न देही ।
डोरी[6] पूरी मापहि नाही बहु बिसटाला लेही ॥२॥
बहतरि घरि[7] इकु पुरखु[8] समाइआ उनि दीआ नामु लिखाई ।
धरमराइ[9] का दफतरु सोधिआ बाकी रिजम न काई ॥३॥
संता कउ मति कोई निंदहु संत रामु है एको ।
कहु कबीर मै सो गुरु[10] पाइआ जा का नाउ बिबेको ॥४॥

दुनीआ हुसीआर बेदार[11] जागत मुसीअत[12] हउ रे भाई ।
निगम[13] हुसीआर पहरूआ देखत जमु ले जाई ॥
नींबु भइओ आंबु आंबु भइओ नींबा केला पाका[14] झारि ।
नालीएर फलु सेबरि[15] पाका मूरख मुगध गवार ॥१॥
हरि भइओ खांडु रेतु महि बिखरिओ हसती[16] चुनिओ न जाई ।
कहि कमीर कुल जाति पांति तजि चीटी होइ[17] चुनि खाई ॥२॥

किउ लीजै गढु बंका भाई ।
दोवर कोट[18] अरु तेवर खाई[19] ॥

[1]प्रवृत्ति । [2]मन । [3]नौ जमादार, नव द्वार । [4]दस इन्द्रियाँ [5]भक्ति भाव । [6]बुद्धि । बेगार=भ्रम में भटकना । [7]बहत्तर कोठे वाला घर=शरीर । [8]पुरुष, अहंकार । [9]न्यायाधीश, धर्मराज । देना पावना=पाप और पुण्य । [10]विवेक । [11]जागता हुआ । [12]डाका डालता है । [13]वेद । [14]नींबु ... पाकर=तात्पर्य यह है कि बहुत काल व्यतीत हो गया । [15]सेमर । [16]हाथी रूपी अहंकार । [17]चींटी होकर, नम्रता ग्रहण करके । [18]अन्नमय और प्राण मय कोष । [19]मनोमय ज्ञानमय और विज्ञानमय कोष । रक्षक=पाँचतत्व, पच्चीस प्रकृतियाँ और मोह मद

पांच पचीस मोह मद मतसर आड़ी परबल माइआ ।
जन गरीब को जोरु न पहुचै कहा करउ रघुराइआ ॥१॥
कामु किवारी[1] दुखु सुखु दरवानी[2] पापु पुंनु दरवाजा[3] ।
क्रोधु प्रधानु[4] महा बड़ दुंदर तह मनु मावासी राजा[5] ॥२॥
स्वाद सनाह[6] टोपु[7] ममता को कुबुधि कमान[8] चढाई ।
तिसना तीर[9] रहे घट भीतरि इउ गढु लीओ न जाइ ॥३॥
प्रेम पलीता[10] सुरति हवाई[11] गोला[12] गिआनु चलाइआ ।
ब्रहमि अगनि[13] सहजे परजाली एकहि चोट सिझाइआ ॥४॥
सतु संतोखु[14] लै लरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ।
साधसंगति[15] अरु गुर की क्रिपाते[16] पकरिओ गढ़ को राजा ॥५॥
भगवत भीरि सकति सिमरन की करी काल मै फासी ।
दासु कमीरु चढिओ गढ ऊपरि राजु लीओ अबनासी[17] ॥६॥

जब लगु मेरी मेरी करै ।
तब लगु काजु एकु नहीं सरै ॥
जब मेरी मेरी मिटि जाइ ।
तब प्रभ काज सवारहि आइ ॥
ऐसा गिआनु बिचारु मना ।
हरि की न सिमरहु दुख भजना ॥१॥

तथा मत्सर के साथ प्रबल माया ।

[1]काम । [2]दरवान (सुख और दुःख) । [3]पाप-पुण्य । [4]सेनापति (द्वंद्व करने वाला क्रोध) । [5]दुर्गपति (मन) । [6]कवच (स्वाद) । [7]ममता । [8]बुद्धि । [9]तृष्णा । [10]प्रेम । [11]तोप (आत्मा) [12]ज्ञान । [13]ब्रह्माग्नि । [14]अस्त्र, सत्य और संतोष । [15]साधु संगति [16]और गुरु कृपा = नीति । [17] अबनासी राजु = अविनाशी राज्य (अनन्त जीवन)

जब लगु सिंघु[1] रहै बन[2] माहि ।
तब लगु बनु फूलै ही नाहि[3] ॥
जब ही सिआरु[4] सिंह कउ खाइ ।
फूली रही सगली बनराइ[5] ॥२॥
जीतो बूडै हारो तिरै ।
गुर परसादी पारि उतरै ॥
दासु कबीरु कहै समझाइ ।
केवल राम रहहु लिव लाइ ॥३॥

जोइ[6] खसमु है जाइआ[7] ।
पूति[8] बापु खेलाइआ ॥
बिनु स्रवणा[9] खीरु पिलाइआ ।
देखहु लोगा कलि को भाउ ॥
सुति मुकलाई[10] अपनी माउ[11] ॥१॥
पगा बिनु हुरीआ[12] मारता ।
बदनै बिनु खिर खिर हासता ॥
निद्रा बिनु नरु पै सोवै ।
बिनु बासन[13] खीरु[14] बिलोवै ॥२॥
बिनु असथन[15] गऊ[16] लवेरी ।
पैडे[17] बिनु बाट घनेरी ॥

[1]बलशाली मन । [2]शरीर । [3]तब लगु ···नाहि = तब तक शरीर की आध्यात्मिक शक्तियों का विकास नहीं होता । [4]गुरु का शब्द । [5]वनराजि, शरीर के चक्र और कमल । [6]स्त्री । [7]उत्पन्न किया है । [8]पुत्र (अज्ञान) । [9]बिनु स्रवणा खीरु = बिना तरलता के दूध (थोथा ज्ञान) । [10]मुक्त कर लिया । [11]अपनी माता (माया) । [12]लात । [13]बर्तन (सत्य) । [14]दूध (ज्ञान की बातें) [15]स्तन (वास्तविकता) [16]गाय, मोह ममता । [17]सम्प्रदाय ।

बिनु सतिगुर बाट न पाई ।
कहु कबीर समुझाई ॥३॥

नाइकु[1] एकु बनजारे पाच[2] ।
बरध[3] पचीसक संगु काच[4] ॥
नउ बहीआ[5] दस गोनि[6] आहि ।
कसन[7] बहतरि[8] लागी ताहि ॥
मोहि ऐसे बनज सिउ नही काजु ।
जिह घटै मूलु[9] नित बढै बिआजु ॥१॥
सात सूत[10] मिलि बनजु कीन ।
करम भावनी[11] संग लीन ॥
तीनि जगाती[12] करत रारि ।
चलो बनजारा हाथ झारि ॥२॥
पूँजी[13] हिरानी बनजु टूट ।
दहदिस[14] टांडो गइओ फूटि ॥
कहि कबीर मन सरसी काज ।
सहज समानो त भरम भाज ॥३॥

[1]नायक (शरीर) । [2] बनजारे पाच = पञ्च तत्व । [3]बैल (प्रकृतियाँ) [4]कल्पा । [5]नवद्वार । [6]दस इन्द्रियों । । [7]कोष्ठ [8]बहत्तर । [9]आत्म तत्व । [10]सप्त धातु । [11]स्त्री । [12]सतोगुण तमोगुण और रजोगुण । [13]आत्म तत्व । [14]दसों इन्द्रियाँ ।

सूफी मत से सम्बन्ध रखने वाले पद

फुरमानु[1] तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार ।
तुहीं दरीआ[2] तुही करीआ[3] तुझै ते निस्तार ॥
बंदे बंदगी इकतीआर[4] ।
साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु ॥१॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि[5] ।
कहि कबीर गुलामु घरका जीआइ भावै मारि ॥२॥

हम मसकीन[1] खुदाई बंदे तुम राजसु मनि भावै ।
अलह अवलि२ दीन को साहिबु[3] जोरि[4] नहीं फुरमावै[5] ॥
काजी बोलिआ बनि नहि आवै[6] ॥१॥
रोजा धरै निवाज गुजारै कलमा भिसति[7] न होई ।
सतहि[8] करबा घटही भीतरि जेकरि जानै कोई ॥२॥
निवाज सोई जो निआउ[9] बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाचहु[10] मुसि मुसला[11] बिछावै तब तउ दीनु पछानै ॥३॥
खसमु[12] पछानि तरस[13] करि जीअ महि मारि मणी[14] करि फीकी ।
आपु जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी ॥४॥
माटी एक भेख धरि नाना तामहि ब्रहमु पछाना ।
कहै कबीरा भिसति छोड़ि करि दोजक[15] सिउ मन माना ॥५॥

[1]आज्ञा पत्र । [2]नदी । [3]कर्णधार । [4]अधिकार । आग । [5]दीन, अकिंचन । [6]आलह अवलि = सर्वप्रथम ईश्वर । [7]दीन की साहिबु = धर्म के स्वामी । [8]अत्याचार । [9]आज्ञा देती है । [10]बोलिया जनि नहि आवै = ठीक तरह से बोलते नहीं बनता । [11]स्वर्ग । [12]सत्तर । [13]न्याय । [14]पाच इन्द्रियों । [15]मुसल्ला । [16]स्वामी । [17]दया । [18]वीर्य या अहङ्कार । [19]नरक ।

राजा घरै मनावै अलहु[1] सुआदति[2] जीअ सधारै ।
आपा[3] देखि अवर नहीं देखै काहे कउ झख मारै ॥
काजी साहिबु एकु तोही महि तेरा सोचि विचारि न देखै ।
खबरि[4] न करहि दीन के बउरे ताते जनमु अलेखै[5] ॥१॥
साचु कतेब[6] बखानै अलहु नारि पुरखु नहीं कोई ।
पढ़े गुने नाई कछु बउरे जउ दिल महि खबरि न होई ॥२॥
अलहु गैबु[7] सगल[8] घट भीतरि हिरदय लेहि विचारी ।
हिन्दु तुरक दुहूँ महि एकै कहै कबीर पुकारी ॥३॥

बेद कतेब[9] इफतरा[10] भाई दिल का फिकरु न जाइ ।
टुकु दमु करारी[11] जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ[12] ॥
बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी[13] माहि ।
इह जु दुनीआ सिहरु[14] मेला दसतगीरी[15] नाहि ॥१॥
दरोगु[16] पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबर बादु बकाहि ।
हकु[17] सचु खालकु[18] खलक मिआने[19] सिआम[20] मूरति नाहि ॥२॥
असमान म्यिाने लहग दरीआ[21] गुसल करदन बूद[22] ।
करि फकरु[23] दाइम[24] लाइ चसमे[25] जह तह मउजूद ॥३॥
अलाह पाक पाक[26] है सक करउ जे दूसर होइ ।
कबीर करमु[27] करीम[28] का उहु करै जानै सोइ ॥४॥

[1]अल्लाह । [2]स्वाद । [3]अपना स्वार्थ । [4]सहानुभूति । [5]निकम्मा । [6]मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ । [7]परोक्ष । [8]सम्पूर्ण । [9]बेद और कुरान । [10]झूठे । [11]स्थिरता । [12]ईश्वर । [13]व्याकुलता । [14]नगर । [15]विपत्ति के समय हाथ पकड़ने वाला । [16]झूठ । [17]सत्य और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर । [18]सृष्टि कर्त्ता । [19]मध्य । [20]श्याम । [21]आकाश गंगा । [22]स्नान किया था । [23]चिंतन । [24]सदैव । [25]आंख । [26]पूर्ण पवित्र । [27]कृपा । [28]कृपालु ।

अवलि[1] अलह नूरु[2] उपाइआ[3] कुदरति[4] के सभ बंदे ।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउ न भले को मंदे ॥
लोगा भरमु न भूलहु भाई ।
खालिकु[5] खलक खलक महि खालकु पूरि रहिओ सब ठाई ॥१॥
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजन हारै ।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच[6] कुंभारै ॥२॥
सभ महि सचा एको सोई तिसका कीआ सभु कछु होई ।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई ॥३॥
अलहु अलखु[7] न जाई लखिआ गुरि[8] गुड़ु दीना मीठा ।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा ॥४॥

वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै ।
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै ॥
मुलां[9] कहहु निआउ खुदाई ।
तेरे मन का भरम न जाई ॥१॥
पकरि जीउ आनिआ देह बिनासी माटी कउ बिसमिल कीआ[10] ।
जोति सरूप अनाहत[11] लागी कहु हलालु किउ कीआ ॥२॥
किआ उजू[12] पाकु कीआ मुहु धोइआ किआ मसीति[13] सिरु लाइआ ।
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु[14] किआ हज काबै जाइआ ॥३॥
तूं नापाकु पाकु नही सूझिआ तिसका मरमु न जानिआ ।
कहि कबीर भिसति ते चूका दोजक सिउ मनु मानिआ ॥४॥

[1]प्रथम । [2]प्रकाश । [3]सृष्टि की । [4]प्रकृति । [5]सृष्टिकर्ता में सृष्टि तथा सृष्टि में सृष्टिकर्ता है । [6]बुराई । [7]अदृश्य । [8]उपदेश । [9]मुल्ला । [10]शस्त्राघात किया । [11]असण्ड । [12]नमाज के पूर्व हाथ पैर धोने की क्रिया । [13]मसजिद । [14]नमाज़ पढ़ते हो ।

विविध पद

निदउ निदउ मो कउ लोगु निदउ ।
निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥
निंदा बापु निंदा महतारी ।
निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ ॥
नामु पदारथु[1] मनहि बसाईऐ ॥
रिदै सुध[2] जउ निंदा होइ ।
हमरे कपरे[3] निंदकु धोइ ॥१॥
निंदा करै सु हमरा मीतु ।
निंदक माहि हमारा चीतु ॥
निंदकु सो जो निंदा होरै[4] ॥
हमारा जीवनु निंदकु लोरै[5] ॥२॥
निंदा हमरी प्रेम पिआरु ।
निंदा हमरा करै उधारु ॥
जन कबीर कउ निंदा सारु ।
निंदकु डूबा हम उतरे पारि ॥३॥

बारह बरस बालापन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ।
तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पछुताना बिरधि भइओ ॥
मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
साइर[6] सोखि भुजं[7] बलइओ[8] ॥१॥

[1]नाम का तत्व। [2]शुद्ध। [3]कपड़े। [4]होड़, स्पर्धा। [5]नष्ट ... ता है। [6]शरीर रूपी सागर। [7]काम रूपी सर्प। [8]...बवान हो गया।

सूके सरवरि पालि[1] बधावै लूणै[2] खेति हथ वारि करै[3] ।
आइओ चोरु[4] तुरतह ले गइओ मेरी राखत मुगधु[5] फिरै ॥२॥
चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार[6] वहै ।
जिहवा वचनु सुधु नहीं निकसै तब रे धरम की आस करै ॥३॥
हरि जीउ क्रिया करै लिव लावै लाहा[7] हरि हरि नामु लीओ ।
गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिआ नालि चलिओ[8] ॥४॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनु धनु कछूऐ लै न गइओ ।
आई तलब गोपालराइ की माइआ मंदर छोडि चलिओ ॥५॥

चारि पाव दुइ सिंग गुंग[9] मुख तब कैसे गुन गई है ।
ऊठत बैठत ठेगा[10] परिहै तब कत मूड[11] लुकई है[12] ॥
हरि बिनु बैल बिराने हुई है ।
फाटे नाकन टूटे काधन कोदऊ को भुसु खई है ॥१॥
सारो दिनु डोलत बन महीआ अजहु न पेट अघई है ।
जब भगतन को कहो न मानो कीओ अपनो पई है ॥२॥
दुख सुख महा भ्रमि बूडो अनिक जोनि भरमई है ।
रतन जनमु खोइओ प्रभु बिसरिओ इहु अवसरु कत पई है ॥३॥
भ्रमत फिरत तेलक[13] के कपि जिउ गति बिनु रैन बिहई है ।
कहत कबीर राम नाम बिनु मूड धुने पछुतई है ॥४॥

ग्रिहु तजि बनखंड जाईऐ चुनि खाईऐ कंदा ।
अजहु बिकार न छोडई पापी मनु मंदा ॥

[1] मेंड । [2] कटे हुए । [3] रक्षा कर रहा है । [4] मूर्ख । [5] काल रूपी चोर । [6] व्यर्थ । [7] लाभ पूर्वक । [8] नाड़ी चले जाने पर (शरीर के निधन पर) । [9] गूँगा । [10] डंडा । [11] सिर । [12] छिपावेगा । [13] बाजीगर ।

किउ छूटउ कैसे तरउ भव जल निधि भारी ।
राखु राखु मेरे बीठुला[1] जनु सरनि तुम्हारी ॥१॥
बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई ।
अनिक जतन करि राखीऐ फिरि फिरि लपटाई ॥२॥
जरा जीवन जोबनु गइआ किछु कीआ न नीका ।
इहु जीअरा निरमोलको कउडी लगि मीका[2] ॥३॥
कहु कबीर मेरे माधवा तू सरब बिआपी ।
तुम समसरि[3] नाही दइआलु मोहि समसरि पापी ॥४॥

सतु मिलै किछु सुनीऐ कहीऐ ।
मिले असतु मसटि[4] करि रहीऐ ॥
बाबा बोलना किआ कहीऐ ।
जैसे राम नाम रवि[5] रहीऐ ॥१॥
सतन सिउ बोले उपकारी[6] ।
मूरख सिउ बोले झख मारी ॥२॥
बोलत बोलत बढहि बिकारा[7] ।
बिनु बोले किआ करहि बीचारा ॥३॥
कहु कबीर छूछा घटु बोलै ।
भरिआ होइ सु कबहु न डोलै ॥४॥

राम सिमरु पछुताहिगा मन ।
पापी जीअरा लोभु करतु है आजु कालि उठि जाहिगा ॥
लालच लागे जनमु गवाइआ माइआ भरम भुलाहिगा ।
धन जोबन का गरबु न कीजै कागद जिउ[8] गलि जाहिगा ॥१॥

[1] विट्ठल । [2] मोल फेंक दिया । [3] समान । [4] चुप । [5] लीन । [6] उपकार होता है । मूर... मारी = मूर्ख से बोलना मानो झख मारना है । [7] विकार । [8] समान ।

जउ जमु आइ केस गहि पटकै ता दिन किछु न वसाहिगा ।
सिमरनु भजनु दइआ नही कीनी तउ मुखि[1] चोटा[2] खाहिगा ॥२॥
धरमराइ जब लेखा मागै किआ मुखु लैकै जाहिगा ।
कहतु कबीर सुनहु रे संतहु साध संगति तरि जाहिगा ॥३॥

उसतति[3] निंदा दोउ बिबरजित[4] तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचनु सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥
तेरा जनु एक आधु कोई ।
कामु कोधु लोभु मोहु बिबरजित हरिपदु चीन्है सोई ॥१॥
रज गुण तम गुण सत गुण कहीऐ एह तेरी सभ माइआ ।
चउथे पद[5] कउ जो नरु चीन्है तिन ही परम पदु पाइआ ॥२॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिसना अरु माइआ भ्रमु चूका चितवत आतम रामा ॥३॥
जिह मंदरि दीपकु परगासिआ अंधकारु तह नासा ।
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जन दासा ॥४॥

काम क्रोध त्रिसना[6] के लीने[7] गति नही एकै जानी ।
फूटी आखै कछू न सूझै बूडि मूए बिनु पानी ॥
चलत कत टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।
असति[8] चरम बिसटा[9] के मूंदे[10] दुरगंध ही के बेढे[11] ॥१॥
राम न जपहु कवन भ्रम भूले तुमते कालु न दूरे ।
अनिक जतन करि इह तनु राखहु रहै अवस्था पूरे ॥२॥
आपन कीआ कछू न होवै किआ को करै परानी[12] ।
जा तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी ॥३॥

[1]मुख । [2]चोट । [3]स्तुति । [4]रहित । [5]मुक्ति । [6]तृष्णा । [7]ग्रसित ।
[8]अस्थि । [9]विष्ठा । [10]ढके । [11]आवरण । [12]प्राणी ।

बलूआ के घरूआ महि बसते फुलवत देह अइआने ।
कहु कबीर जिह रामु न चेतिओ बूडे बहुतु सिआने[1] ॥४॥

चारि दिन अपनी नउबति[2] चले बजाइ ।
इतनकु खटीआ गठीआ मटीआ[3] सगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मिहरी[4] रोवै दुआरै लउ सग माइ ।
मरहट लगि सभु लोगु कुटंबु मिलि हंस इकेला जाइ ॥१॥
वै सुत वै बित वै पुरपाटन[5] बहुरि न देखै आइ ।
कहतु कबीरु राम को न सिमरहु जनमु अकारथ जाइ ॥२॥

नागे आवनु नागे जाना ।
कोइ न रहि है राजा राना[6] ॥
रामु राजा नउ निधि मेरै ।
सपै[7] हेतु कलतु[8] धनु तेरै ॥१॥
आवत संग न जात सगाती ।
कहा भइओ दरि[9] बाधे हाथी ॥२॥
लका गढु सोने का भइआ ।
मूरखु रावनु किआ ले गइआ ॥३॥
कहि कबीर किछु गुनु बीचारि ।
चलै जुआरी दुइ हथ झारि ॥४॥

सो मुला[10] जो मन सिउ लरै[11] ।
गुर उपदेसि काल सिउ जुरै[12] ॥

---

[1]चतुर । [2]वैभव तथा मङ्गल सूचक वाद्य । [3]घड़ा । [4]स्त्री । [5]पट्टन, बड़ा नगर । [6]राणा । [7]सम्पत्ति । [8]स्त्री । [9]द्वार । [10]मुल्ला (बहुत बड़ा विद्वान) । [11]लड़े । [12]युद्ध करे ।

काल पुरख[1] का मरदै मानु ।
तिसु मुला कउ सदा सलामु ॥
है हजूरि कत दूरि बतावहु ।
दुदर[2] बाधहु[3] सुंदर पावहु[4] ॥१॥
काजी सो जु काइआ बीचारै ।
काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै[5] ॥
सुपनै बिंदु न देई झरना ।
तिसु काजी कउ जरा न मरना ॥२॥
सो सुरतानु[6] जु दुइ सर तानै[7] ।
बाहरि जाता भीतरि आनै ॥
गगन मंडल महि लसकरु[8] करै ।
सो सुरतानु छत्रु सिरि धरै ॥३॥
जोगी गोरखु गोरखु करै ।
हिंदू राम नाम उचरै ॥
मुसलमान का एकु खुदाइ ।
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ ॥४॥

सभु कोई चलन कहत है ऊहा ।
ना जानउ बैकुंठु है कहाँ ॥
आप आप का मरमु न जाना ।
बातन ही बैकुंठु बखाना ॥१॥

[1]काल पुरुष, यमराज । [2]संघर्ष । [3]वश में करो । [4]मङ्गल होगा । [5]उद्भासित करे । [6]सुलतान । [7]शरों का संधान करता है । बाहरि··· आनै=एक से वह समस्त विकारों को अपने शरीर से बाहर निकाल देता है, और दूसरे से वह समस्त अनुभूतियों को भीतर ले आता है । [8]लश्कर, विचार समूह ।

जब लगु मन बैकुंठ की आस ।
तब लगु नाही चरन निवास ॥२॥
खाई कोटु[1] न परलपगारा[2] ।
ना जानउ बैकुंठ दुआरा ॥३॥
कहि कबीर अब कहीऐ काहि ।
साध संगति बैकुंठै आहि ॥४॥

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाजु टका चारि गांठी ऐंडौ[3] टेढौ जातु ॥
बहुतु प्रतापु गाउ सउ पाए दुइ लख टका बरात ।
दिवस चारि की करहु साहिबी जैसे बनहर[4] पात ॥१॥
ना कोऊ लै आइओ इहु धनु ना कोऊ लै जातु ।
रावन हूं ते अधिक छत्रपति खिन महि गए बिलात ॥२॥
हरि के संत सदा थिरु जहुजो हरि हरि नामु जपात ।
जिन कउ क्रिपा करत है गोबिदु ते सतसंगि मिलात ॥३॥
मात पिता बनिता सुत संपति अंति न चलत संगात ।
कहत कबीर राम भजु बउरे जनमु अकारथ जात ॥४॥

सामान्य भाषा विज्ञान

लेखक श्री बाबूराम सक्सेना

भाषा-विज्ञान सबंधी यह पुस्तक सामान्य श्रेणी के पाठक और भाषा-विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। परयह होने पर भी उक्त विषय का कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य छूटने नहीं पाया है, और विशेषज्ञ भी इस पुस्तकसे काफी लाभ उठा सकेंगे ऐसी हमारी धारणा है। ऐसे जटिल और नीरस(तथापि अवश्य जानने योग्य) विषय को लेखक ने ऐसा सुगम, सुबोध बल्कि रोचक बना दिया है कि आश्चर्य होता है। लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है।

का इतिहास, ग्रन्थसूची

सन्निविष्ट हैं। मूल्य ४)

साहित्य मंत्री